प्रकाश-चिकित्सा

लेखक

डा० सुधीर कुमार मुकर्जी, एम० एस-सी०, डी० फिल०

प्रयाग

प्रयाग विश्वविद्यालय

१९३८

पूर्वकथन

लगभग छः वर्ष हुये प्रयाग विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के अध्यक्ष डा० नीलरत्न धर महोदय ने 'न्यू कन्सेपशन्स इन बायोकेमिस्ट्री' नामक एक पुस्तक लिखी थी जिसे प्रयाग के इण्डियन प्रेस हाउस ने प्रकाशित किया है। डा० धर ने अपने प्रयोगों द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि सामान्य ताप-क्रम पर ही शरीर में वायु द्वारा खाद्य पदार्थों का किस प्रकार ओषदीकरण होता है। आप का विचार है कि सूर्य्य के प्रकाश की विद्यमानता में शरीर की पाचनशक्ति बढ़ जाती है और खाद्य पदार्थों का ओषदीकरण भी बढ़ जाता है। भोजन के ठीक न पचने से बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इन रोगों के निवारण में सूर्य्य के प्रकाश से बहुत सहायता मिलती है। डा० धर की अपनी सम्मति यह है, कि सूर्य्य का प्रकाश इन रोगों में इसलिये लाभकर है कि इसकी विद्यमानता में भोजन ठीक रूप से पचता है। विटेमिनों और अनेक ग्रन्थियों के अन्तःस्रावों का भी लाभकर प्रभाव इसी कारण है कि उनकी उपस्थिति में खाद्य पदार्थों का ओषदीकरण ठीक प्रकार से होता है।

इस छोटी सी पुस्तिका में डा० धर के सुयोग्य शिष्य डा० सुधीर कुमार मुकर्जी ने डा० धर की उक्त पुस्तक के दो अध्यायों

का अनुवाद प्रस्तुत किया है। इस पुस्तिका के पूर्वार्ध में प्रकाश द्वारा रोग-चिकित्सा का विवरण दिया गया है। प्रकाश द्वारा विटेमिनों की उत्पत्ति किस प्रकार होती है, इस बात की भी शास्त्रीय मीमांसा की गई है। पुस्तिका के उत्तरार्ध में उन रोगों की मीमांसा की गई है जो भोजन की हीनता के कारण होते हैं। उन रोगों का प्रकाश और विटेमिनों द्वारा किस प्रकार निवारण होता है, यह भी बताने की चेष्टा की गई है।

डा० मुकर्जी ने यह अनुवाद अपनी 'एम्प्रेस-विक्टोरिया रीडरशिप' नामक छात्र वृत्ति की अवधि में किया है जिसके लिये वे प्रयाग विश्वविद्यालय के कृतज्ञ हैं।

हमें पूर्ण आशा है कि इस पुस्तिका से हिन्दी-भाषियों का बड़ा उपकार होगा, जिसके लिए हम डा० मुकर्जी के ऋण रहेंगे।

कला कुटीर
बेली रोड, प्रयाग
२२-२-३८

सत्यप्रकाश

पूर्वार्द्ध

वर्तमान काल की प्रकाश-चिकित्सा का जन्म-दाता फिनसेन[1] कहा जा सकता है। उसने इस महान कार्य को सन् १८९३ ईसवी में आरम्भ किया था। इस कार्य में उसे बड़ी सफलता मिली और उसने ल्यूपस (Lupus) जो एक चर्म रोग है इसी से अच्छा किया। इस रोग का अच्छा होना बड़ा कठिन समझा जाता था। इस रोग के १२०० रोगियों में से ११०० रोगियों को बहुत लाभ हुआ। रोलियर[2] ने भी इस कार्य में बड़ी उन्नति की और लैसिन[3] में एक चिकित्सालय तपेदिक के रोगियों की प्रकाश से चिकित्सा करने के लिये खोल दिया। जब से वहां इस रोग की चिकित्सा में बहुत लाभ हुआ है, तभी से प्रकाश-चिकित्सा आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र का एक अंग हो गयी है। फिनसेन और रोलियर दोनों व्यक्तियों ने इस लाभ का कारण सूर्य के प्रकाश में पराकासनी किरणों का होना बताया है। प्रकाश-चिकित्सा से आल्प्स् पर्वत पर अधिक लाभ हुआ। पर यह इस कारण से नहीं कि वहां पराकासनी किरणें अधिक थीं किन्तु इसका कारण यह था कि पर्वत पर की बर्फ उष्ण किरणों को अत्यधिक सोख लेती है और पराकासनी किरणों को बिखेर देती हैं। ६००० फुट की ऊँचाई पर किरणें समुद्र की

---

1. Finsen
2. Rollier
3. Leysin

सतह से डेढ़ गुनी अधिक रहती हैं। इस बात की आवश्यकता नहीं रहती, कि सीधे सूर्य्य की किरणों में रोगी को रक्खा जाय क्योंकि आकाश में छिटके हुये प्रकाश से यथेष्ट पराकासनी किरणें मिल जाती हैं।

मनुष्य शरीर पर पराकासनी प्रकाश का जो प्रभाव पड़ता है उसका अनुसन्धान करने के लिये क्वार्ट्ज-पारद-दीपक बहुत सुविधा जनक है। इस बात के सिद्ध हो जाने से कि पराकासनी प्रकाश रोग के लिये विशेष लाभदायक है, इसका प्रयोग दिन पर दिन बढ़ता जाता है, यहाँ तक कि पराकासनी-पारद-दीपक का व्यापार भी बढ़ गया है।

पराकासनी प्रकाश का दीपक

आजकल दो प्रकार के दीपक काममें आ रहे हैं—वायु से ठंडा होने वाला 'सूर्य्य-दीपक' और दूसरा पानी से ठंडा किया हुआ दीपक। हवा से ठंडे किये हुये लैम्प के प्रकाश में ❀ ३००० ऑ

❀ 'ऑ' से तात्पर्य्य आंग्सट्रम इकाई से है। यह प्रकाश की लहरों की लम्बाई नापनेकी एक माप है। भिन्न-भिन्न रंगों की किरणों की लम्बाई इस प्रकार है—

पराकासनी	—	१८५० से ३६०० ऑ तक
कासनी	—	३६०० से ४२४० ऑ तक
नीला	—	४२४० से ४६२० ऑ तक
हरा	—	४६२० से ५३५० ऑ तक
पीला	—	५३५० से ५८६० ऑ तक
नारंगी	—	५८६० से ६४७० ऑ तक
लाल	—	६४७० से ७५०० ऑ तक

से बड़ी किरणों की मात्रा बहुत होती है और पानी से ठंडा किये हुये लम्प के प्रकाश में ३००० आँ से छोटी किरणों की मात्रा बहुत होती है और उनकी चमक बहुत तेज़ होती है।

किसके ऊपर किस प्रकार का प्रभाव इस प्रकाश-चिकित्सा का पड़ता है, यह भी विचित्र है। गोरे मनुष्य के ऊपर प्रभाव अधिक पड़ता है, काले मनुष्य पर कम। पुरुषों पर कम और स्त्रियों पर अधिक। बूढ़ों की अपेक्षा जवानों पर अधिक पड़ता है। जो भाग सदा ढका रहता है उस पर भी प्रभाव अधिक पड़ता है। कभी कभी शरीर के सब अंगों को एक साथ ही किरणों के सामने नहीं रखते किन्तु बारी बारी से रखते हैं और जो अंग एक बार किरण सोख चुका है उसको दुबारा प्रकाश अधिक समय तक दिया जा सकता है।

इस पराकासनी किरणका प्रभाव आँख पर अधिक पड़ता है।

प्रकाश से आँखों की रक्षा

एलिस और वेल्स[1] ने बड़े साहस का एक प्रयोग किया। वे बिना किसी परदे या रोक के पराकासनी किरणों के सम्मुख बैठे और किरणोंके प्रभावका उन्होंने अनुभव किया। इनके ऊपर किरणें ३००० 'कैंडिल पावर' वाली डाली गयीं। ये १६ या २० इंचकी दूरीपर आध घंटे तक बैठे रहे। बारी बारीसे शिर और शरीर पर प्रकाश डाला गया। कुछ ही काल पीछे शरीर गरम हो गया और विचित्र प्रकार की सनसनाहट शरीर में ज्ञात होने लगी।

---

[1] Ellis and Wells

शरीर पर लाल लाल चकत्ते पड़ गये जो तीन दिन पीछे जाकर मिटे। शरीर की त्वचा कड़ी पड़ गई किन्तु छाले नहीं पड़े और कुछ समय बाद नया चर्म प्रगट हुआ जो लचीला और भूरा था। रोगी दो घंटे में लाल होगया। शरीर फूल गया मगर कुछ ही दिन बाद अच्छा होगया। शरीर में नयी स्फूर्ति आगई, और शक्ति ज्ञात होने लगी। इसका प्रभाव अच्छे शरीर पर और अच्छा पड़ेगा।

एरीथिमा रोग

हिल[1] साहेब कहते हैं कि यदि सूर्य्य की किरण क्विनीन सल्फेटके घोलसे छनकर आये तो ४२०० ऑ से छोटी किरणों को घोल सोख लेगा। यदि चर्मको पानी के प्रवाहसे ठंढा रक्खा जाय तो इस छने हुये प्रकाश से एरीथिमा नहीं होगा। सम्भवतः एरीथिमा पराकासनी किरणों के कारण होता है। हिल साहेब अपने अनुसन्धानों से यह अनुमान करते हैं कि सूर्य के प्रकाश में एरीथिमा उत्पादक किरणें ३३००—३००० ऑ के बीच की हैं। एसीटोन मिथाइलीन ब्लू के फीके पड़ने और एरीथिमा उत्पन्न होने में भी कुछ सम्बन्ध मालूम होता है। हौसर और वाहले[2] साहेब का कार्य बहुत ठीक जान पड़ता है। उन्होंने थरमोपाइल से प्रकाश की घनता को नाप कर यह पता लगाया है कि एरीथिमा उत्पादक किरणें जो पारद-वाष्प-लैम्प से

---

1. Hill
2. Hausser and Vahle

निकलती हैं सब से अधिक २९६७ ऑ वाली हैं । ३१३१ ऑ लम्बाई की किरणों से २९६७ का ४·५ प्रति सैकड़ा एरीथिमा होता है परंतु सूर्य के प्रकाश में इसी किरण का बाहुल्य है। सूर्य की वे किरणें जो सूखा अच्छा करती हैं और विटेमिन-डी बनाती हैं, ३२००—२९०० ऑ के बीच की हैं।

प्रकाश चिकित्सा का क्षेत्र

आज कल चिकित्सा शास्त्रमें प्रकाश-चिकित्सा का क्या स्थान है, यह 'स्काटिश बोर्ड आव् हेल्थ' की इस विज्ञप्ति से पता चलता है। उसमें कहा है कि 'जब शरीर की वृद्धि कम हो जाती है या पोषण ठीक नहीं होता, कोई न कोई उपाय करना पड़ता है। पराकासनी किरणों के द्वारा चिकित्सा करना एक नई प्रणाली है। इस चिकित्साका क्षेत्र कितना विस्तृत है, अभी ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। परन्तु अनुसंधान से पता चला है कि इसका प्रयोग शरीर की नियमित वृद्धि के लिये हो सकता है। इसके प्रभाव से वज़न बढ़ जाता है, वृद्धि की गति बढ़ जाती है, रक्त में लवणों की मात्रा बढ़ जाती है, ग्रन्थियों के कार्यमें उन्नति हो जाती है और शरीरमें कीटाणुयों के मारने की शक्ति बढ़ जाती है। इतना होने पर भी स्वस्थ शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जिस जिस रोगीकी चिकित्सा की गयी, उसने इसके प्रभाव को आशाजनक पाया और उसके शरीर की व्यथा भी दूर होती प्रतीत हुई।'

क्रूकशेङ्क और वाट[1] यह बताते हैं कि प्रकाशसे कुटेनस तन्तु बढ़ जाते हैं और पसीने वाली गिल्टियाँ शक्तिमान हो जाती हैं।

शरीरचर्मकी भेदकता

छोटी किरणों को शरीर के पतले चमड़े, जो एपीडरमिस कहाते हैं, सोख लेते हैं। परन्तु लम्बी किरणें शरीरके भीतर गहराई तक जाती हैं। नीचेकी तालिकासे इसका पता ठीक ठीक चलता है कि कौन सी किरणें चर्ममें कितनी अन्दर चली जाती हैं।

किरण की लम्बाई (आंग्सट्रम इकाईमें)	प्रतिशत भेदकता	
	०·१ मि०मी०मोटा चर्म	१ मि० मी० मोटा चर्म
४३६०	५९	०·५
४०५०	५५	०·३
३६६०	४९	०·०८
३५४०	४२	०·०२
३१३०	३०	—
३०१५	४	—
२९९०	२	—
२९७०	०·०१	—

1. Cruickshank and Watt

प्रयाग विश्वविद्यालयकी रसायनशालामें डा० धर और डा० पालितने वायु द्वारा भोजन-पदार्थोंके ओषदीकरण पर बहुतसे प्रयोग किये हैं। खोजोंके आधार पर उन्होंने यह परिणाम निकाले हैं कि जब शरीर प्रकाश को सोख लेता है तो शरीरमें पाचन क्रिया बढ़ जाती है। मनुष्य भला चंगा प्रतीत होता है। सूर्यका प्रकाश ऊपरकी त्वचासे छन कर अन्दर प्रविष्ट होता है और शरीरके अवयवों को प्रभावित कर देता है। इससे शक्कर, प्रोटीन आदि भोज्य-पदार्थोंका पाचन उत्तेजित हो जाता है। जितने भी रोग हैं वे सब भोजन के ठीक न पचनेके कारण ही उत्पन्न होते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि इन रोगों पर प्रकाशका अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

पाचन पर प्रकाशका प्रभाव

डा० धर और सान्याल ने प्रयोगों से यह दिखलाया है कि बहुत से मद्य (दारीलमद्य, ज्वलील मद्य), और ग्लिसरीन इत्यादि पदार्थ प्रकाश में केवल वायु से ओषदीकृत हो जाते हैं। डा० धर और डा० पालित साहेब ने अनेक पदार्थों का ओषदीकरण प्रकाश द्वारा सुचारु रूप से किया है। उन्होंने यह दिखलाया है कि नाना प्रकार के शर्करामय पदार्थ, ग्लिसरीन, मूत्रिया (यूरिया), मधुन (ग्लाइसिन), अश्वमूत्रिकाम्ल (हिप्यूरिक ऐसिड), अ-रेशमिन

प्रोटीन, चर्बी इत्यादि का वायु से ओषदीकरण

(अ-अलेनिन), सैन्धक मूत्रेत, पांशुज पामीटेत, स्टीरेत, ओलियेत, सैंधक पिपीलेत, इमलेत, काष्ठेत, और कौलेस्टरोल एवं, मक्खन, दूध अंडा इत्यादि प्रकाश में वायु से ओषदीकृत हो जाते हैं। उनके प्रयोग फल नीचे दिये जाते हैं।

पदार्थ जो काम में लाये गये	पदार्थ की मात्रा	पदार्थ की मात्रा जो जल गयी	प्रतिशत
ऐरेबिनोज़	० १००० ग्राम	०.००७५ ग्राम	७ ५
दुग्धस्योज़	० ०८६१	० ००६७	७ ८
इक्षु शर्करा	० ०९६४	० ००९८	१०.२
द्राक्षशर्करा	०.०९६२	०.०१४४	१४.९
उत्तरोज	० ०९१८	०.०१५९	१७.३
दुग्धोज	० ०९७७	०.०१९७	१९.७
यवोज़	० १०९७	०.०२८५	२५.९
नशास्ता	०.१०२७	०.०३९९	३८.८
मधुकोजन	०.०७८७	०.०१९५	१९.७
मधुरोल	०.२५००	०.०४५	१८.०
मूत्रिया	०.२०००	०.०१७५	८ ७
मधुन	०.०९९९	०.०-९६	९ ६
अ-रेशमिन	०.०९९७	० ०३६५	३६ ६
अश्व-मूत्रिकाम्ल	०.०४८३	० ००६९	१४.२
सैन्धक मूत्रेत	०.०४२०	० ००८२	१९ ६
सैन्धक इमलेत	०.०९८९	०.०६७९	३१.३
सैन्धक पिपीलेत	० ०७३७	०.०१४६७	१९.९

उन लोगों ने यह भी पता चलाया है कि दस्त-ओषिद (ज़िंक या यशद धातु का), पिनाक नोषेत और लोह नोषेत की उपस्थिति में ओषदीकरण बहुत बढ़ जाता है। द्राक्षशर्करा, दुग्धोज, और अ-रेशमिन के ओषदीकरण में आइन्सटाइन का प्रकाश रासायनिक नियम लागू होता है अर्थात् प्रकाश की एक क्वाण्टम मात्रा से इन पदार्थों का एक अणु ओषदीकृत होता है। पर मधुन में प्रकाश की एक क्वाण्टम मात्रा से ७ अणु ओषदीकृत हो जाते हैं। ऊपर लिखी हुई सब वस्तुएँ पूर्ण रूप से ओषदीकृत हो जाती हैं, और पानी और कर्बन द्विओषिद बन जाता है। बीच की अन्य कोई वस्तु नहीं बनती। अतः यह स्पष्ट है कि प्रकाश से ओषदीकरण जिसपर जीवन निर्भर है, बढ़ जाता है। डा० धर और डा० पालित साहेब ने अंडा, नशास्ता, मक्खन, चीनी इत्यादि के ओषदीकरण पर भी कार्य किया है। उनके परिणाम नीचे दिये जाते हैं।

अंडे की ज़र्दी	६०.५ प्रतिशत
अंडे की सफ़ेदी	३१.२५
नशास्ता	३८.२
मक्खन	३१.८
द्राक्षशर्करा	१३.६
चीनी	७.८
मधुकोजन	७.५

इससे यह पता चलता है कि अंडे की ज़र्दी धूप में शीघ्रता

से ओषदीकृत हो जाती है। चीनी की अपेक्षा मक्खन शीघ्र ही ओषदीकृत हो जाता है। यह ओषदीकरण शरीर के ओषदीकरण की ही भाँति होता है और वायेट[1] ने ऐसा ही ओषदीकरण पशुओं के शरीर में देखा है। इन फलों के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्भवतः रोगों पर प्रकाश चिकित्सा के लाभ-प्रद कार्य का कारण पाचन-शक्ति का बढ़ जाना है। डा० धर साहेब ने यह बात अच्छी तरह से बता दी है कि प्रकाश का प्रभाव ऐसे २ रोगों में हितकारी होगा :—सूखा, बेरी बेरी, ओस्टिओमेलेशिआ, पेलागरा, मधुमेह, रक्तहीनता और नासूर इत्यादि। इन रोगों का प्रकोप भारत और चीन में बड़ी उग्रता से होता यदि भोजन की कमी को पूरा करने वाला सूर्य का प्रकाश इन प्रदेशों में न होता।

पिनकुसेन[2] ने खरगोशों के ऊपर किये गये प्रकाश-चिकित्सा वाले प्रयोग में यह देखा कि प्रोटीन का पाचन प्रकाश में बढ़ गया जिसके प्रमाण-स्वरूप मल में नोपजनीय पदार्थों का अधिक मात्रा में निकलना था।

इसके अतिरिक्त डा० धर साहेब ने मधुमेह की चिकित्सा में प्रकाश को बहुत लाभदायक पाया है। शक्कर के ठीक न पचने से मधुमेह हो जाता है। यद्यपि सैम्पसन[3] साहेब का यह विश्वास है कि पराकासनी प्रकाश का मधुमेह पर कोई

1 Carl von Voit
2. Pincussen
3. Sampson

प्रभाव नहीं पड़ता, फिर भी वह स्वीकार करते हैं कि दूसरे लोगों का अनुभव इसके विपरीत है। बाच[1] साहेब ने 'डायबेटिक गैंग्रीन' की चिकित्सा में प्रकाश का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है।

चिकित्सा शास्त्र में इस प्रकाश-चिकित्सा का क्या सापेक्ष महत्व है उसके संबंध में एलिस और वेल्स साहेब लिखते हैं कि "पराकासनी प्रकाश से शरीर झुलस जाने के बदले जले पर लाभ होता है और झुलसा हुआ भाग अच्छा हो जाता है। पराकासनी प्रकाशकी बहुत सी बातें ठीक ठीक समझमें नहीं आतीं। औषधि के सम्बन्ध में भी यही बात है। मलेरिया में कुनीन, गर्मी में पारा, क्लोरोसिस में लोहा, दस्त में इपीकाकान्हा और अन्य रोगों की अनेकों औषधियाँ जो प्रयोग में लायी जाती हैं वे खोज द्वारा पुस्तक में नहीं आयीं किन्तु अचानक उनका पता चल गया है। ज्योतिषी, जादूगर और जंगली लोगों ने अटकल से कुछ औषधियों का प्रयोग चला दिया है।"

प्रकाश से विटेमिनों का बनना

हुल्डशिन्स्की[2] ने इस बात को प्रमाणित कर दिया है कि सूखा की बीमारी में प्रकाश चिकित्सा से बहुत लाभ होता है। यह प्रकाश पारद लैम्प से निकला हुआ होना चाहिये। हेस और उनजर[3] ने यह बताया है कि जैसे

1. Bach
2. Huldschinsky
3. Hess and Unger

जैसे सूर्य का प्रकाश घटता बढ़ता है, वैसे वैसे मिठवा का रोग भी घटता बढ़ता है। हेस और उनके साथियों ने यह पता चलाया है कि यदि रोगी को विटेमिन ए-और-बी रहित भोजन दिया जाय और यदि सूर्य की किरणें उस पर पड़ती रहें तो उसको सूखा नहीं होता। हुल्डशिन्स्की के कार्य के अनुसार और हेस और उनके सहयोगियों तथा कुमारी चिक[1] के कार्य के अनुसार यह सिद्ध हो गया है कि कार्ट्ज़-पारद-वाष्प-लैम्प से निकले पराकासनी प्रकाश से सूखा उसी प्रकार अच्छा हो जाता है जैसे मछली के तैल इत्यादि सूखा को दूर करने वाले भोजन देने से होता है। दूसरे, इन किरणों से उन पशुओं की जिनके भोजन में विटेमिन-ए का अभाव था शारीरिक वृद्धि नियमानुसार होती रहती है। कुमारी ह्यूम और स्मिथ[2] ने यह देखा है कि यदि चूहे शीशे के बर्तन में बंद कर के किरणों के सामने १३ सैकेंड तक एक एक दिन छोड़ कर रक्खे जायँ तो उन चूहों की अपेक्षा जिनको उपयुक्त भोजन नहीं मिलता, इनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

इसके कुछ ही दिन बाद स्टीनबोक और ब्लैक[3], स्टीनबोक और नेलसन[4] ने यह पता चलाया कि उन खाद्य पदार्थों में

1. Miss Chick
2. Miss Hume and Smith
3. Steenbock and Black
4. Nelson

जिनमें विटेमिन कम रहता है धूप में रखने से मज्जा बनाने की शक्ति आ जाती है। हेस और वाइनस्टोक[1] भी इसी बात की पुष्टि करते हैं। इस तरह से, धूप में रखने से बहुत से खाद्य पदार्थ जैसे गेहूँ, मांस, दूध, अंडा, तैल आदि का प्रभाव बढ़ाया जा सकता है। बहुत से वैज्ञानिकों के मतानुसार प्रकाश के प्रभाव से खाद्य पदार्थों में ऐसे उत्तेजक पदार्थ उत्पन्न हो जाते हैं, जो इनमें पहले न थे। यह पहले पहल तैलों और अन्य मज्जिक पदार्थों में देखा गया कि प्रकाश में रखने से इनमें स्टेरोल, फाइटोस्टेरोल और कोलेस्टेरोल बन जाते हैं। कुछ ही दिनों बाद ड्रमण्ड[2] ने यह देखा कि मछली के तैल को जिसमें विटेमिन-ए और-डी बहुत हैं वायु से बचा कर गरम दाहक पोटाश से उदविश्लेषित करने से विटेमिन तैल के उस भाग में, जिसका साबुन नहीं बन सकता, इकट्ठा हो जाते हैं। यह तैल का सौवां भाग होता है। तैल के भूरे भाग का विटेमिन ज्यों का त्यों अलग किया जा सकता है। इसकी मात्रा ०·८ प्रतिशत होती है। इससे यह पता चला कि विटेमिन कोलेस्टेरोलसे मिलता जुलता है। किंतु कोलेस्टेरोल स्वयं क्रियावान् नहीं है। एक और बात का पता चला था कि यदि कोलेस्टेरोल मस्तिष्क से निकाला जाकर भली प्रकार साफ किया जाय और प्रकाश में

कोलेस्टेरोल और विटेमिन का संबंध

---

1. Weinstock
2. Drummond

रक्खा जाय तो उसमें सूखा को अच्छा करने की शक्ति जो पहले न थी उत्पन्न हो जाती है।

हैस और वाइनस्टोक ने इस बात का पता लगाया कि यदि कोलेस्टेरोल और फाइटेस्टोरोल पराकासनी प्रकाशमें रक्खे जायँ तो इनमें बहुत अंतर पड़ जाता है। इनमें मोमी पदार्थ बन जाते हैं जिनका द्रवणांक पहले के पदार्थों से बहुत ही कम है। यह रूपान्तर उसी प्रकार का है जैसा कि शुल्ज़े और विण्टरस्टाइन[1] ने पाया था। रोज़नहाइम और वेब्स्टर[2] ने यह दिखाया है कि ओषजन की उपस्थिति और अनुपस्थिति दोनों में सूखा उत्पन्न हो जाता है। हेस, वाइनस्टाक और शेरमन[3] यह बताते हैं कि ओषजन की उपस्थिति में प्रकाश में रखने पर इस क्रियावान् पदार्थ का ओषदीकरण हो सकता है और फलतः सूखा दूर करने वाले पदार्थ कम मात्रा में बनेंगे।

चैनन[4] के प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध होता है कि पशु के पेटमें कोलेस्टेरोल बनाने की शक्ति है। गार्डनर और फाक्स[5] साहबके प्रयोगोंसे भी यही बात सिद्ध होती है। कोलेस्टेरोल और उसी जाति के अन्य स्टेरोलों पर पराकासनी किरणों के प्रभाव का अध्ययन

1. Schulze and Winterstein
2. Rosenheim and Webster
3. Sherman
4. Channon
5. Gardner and Fox

इतना किया जा चुका है कि यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि प्रकाश में रखने से इन पदार्थों में सूखा दूर करने वाले पदार्थ उत्पन्न होते हैं। अभी थोड़े वर्षों से इस बात का पता अच्छी तरह चल गया है कि कोलेस्टेरोल इतना कार्य नहीं करता किंतु उसके साथ मिला हुआ कोई अन्य पदार्थ है जो उसमें विटेमिन-डी पैदा करता है। रोज़नहाइम और वेब्स्टर साहब द्वि-अरुणिद से उत्पन्न की हुई कोलेस्टेरोल को पराकासनी प्रकाश से उत्तेजित नहीं करा सके। यह कहा जाता है कि प्रो-विटेमिन भिन्न भिन्न वस्तुओं के प्रभाव से नष्ट हो जाता है। शुल्ट्ज़ और ज़ीग्लर[1] साहब के प्रयोगों के दुहराने पर हाइलब्रान, काम और मोर्टन[2] ने स्पेक्ट्रोग्राफ से दिखलाया है कि साफ किए हुए कोलेस्टेरोल में एक अन्य वस्तु भी रहती है जो ज्वलील सिरकेत[3] में कम से कम घुलने वाले भाग में रवा बनाने पर इकट्ठा हो जाती है। इस पदार्थ की शोषक-पट्टिकायें २९३० आँ, २८०० आँ, २६९० आँ पर हैं, यद्यपि कोलेस्टेरोल का शोषण मामूली है। आलोकित करने पर ये लुप्त हो जाती हैं और पदार्थ में सूखा दूर करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। यह अनुमान किया गया था कि इस पदार्थका विटेमिन-डी के अग्रगामी मूल पदार्थ से मुख्य सम्बन्ध है। जिन दिनों यह कार्य हो रहा था, उन्हीं दिनों रोज़नहाइम और

---

1. Schultz and Ziegler
2. Heilbron, Kamm and Morton
3. Ethyl acetate

वेब्सटर और हेस अनेक पदार्थों के ऊपर पराकासनी किरणों का प्रभाव देखते रहे। जब यह कार्य चल रहा था तभी यह पता चला कि एर्गोस्टेरोल से बहुत तीक्ष्ण सूखा-नाशक पदार्थ उत्पन्न हो गया। इन लोगों ने यह बताया है कि एर्गोस्टेरोल के शोषण-चित्र में तीन पट्टियाँ होती हैं, २९३०, २८०० और २६९० आँ पर, और क्वार्ट्ज पारद वाष्प लैम्प के प्रकाश से प्रकाशित करने पर यह पट्टियां लुप्त हो जाती हैं और साथही साथ इसमें सूखा-नाशक गुण उत्पन्न हो जाते हैं। पौल[1] के अनुसार एर्गोस्टेरोल का पराकासनी-शोषण चित्र उसी प्रकार का बनता है जैसा प्रोविटेमिन, जिसकी कोलेस्टेरोल में ०'०१७ प्रतिशत मात्रा है, बनाता है। रोज़नहाइम और वेब्सटर साहब और विंडौस साहब यह देखकर कि एर्गोस्टेरोल जल्दी ही ओषदीकृत हो जाता है, और इसका किरण-चित्र कोलेस्टेरोल के समान किंतु उससे अधिक गहरा है और आलोकित करने पर इसमें तीव्र सूखा-नाशक गुण उत्पन्न होजाते हैं, इस अनुमान पर पहुँचते हैं कि प्रो-विटेमिन-डी या तो एर्गोस्टेरोल ही है या कोई उसी जातिका स्टेरोल है। वे यह भी कल्पना करते हैं कि प्राकृतिक रूप से उत्पन्न हुये कोलेस्टेरोल में इसी दूसरे पदार्थ के १/२००० भाग में उपस्थित होने के कारण ही बहुत तीव्र सूखानाशक गुण उत्पन्न हो जाते हैं।

---

1. Pohl

प्रभावित किया हुआ एर्गोस्टेरोल निश्चय ही बहुत शक्तिमान सूखानाशक पदार्थ है और यह अनुमान किया जाता है कि इसकी करीब ५ मिली-ग्राम मात्रा एक लिटर अच्छे मछलीके तैल के बराबर लाभकर होती है। रोज़ेन

एर्गोस्टेरोल और प्रो-विटेमिन

हाइम और वेबसटर यह बतलाते हैं कि चूहों के लिये इसकी मात्रा १ १०००० से लेकर १ २०००० मिलीग्राम एक समय के भोजन के साथ है। ये लोग यह भी बताते हैं कि सूर्य्य के पराकासनी प्रकाश की दीर्घ लम्बाई वाली किरणें एर्गोस्टेरोल को प्रभावित कर देने की शक्ति रखती हैं। जब इस बात का ध्यान रक्खा जाय कि मनुष्यों के चर्म में कोलेस्टेरोल १३ प्रतिशत से लेकर १७ प्रतिशत तक मौजूद है और यह कि इस कोलेस्टेरोल में कोई ऐसा पदार्थ वर्तमान है जिसका पराकासनी शोषण चित्र वैसा नहीं है जैसा कि एर्गोस्टेरोल का है, तब इस बात का अनुमान होता है कि सूर्य्य का प्रकाश सूखा को अच्छा करने में कितना शक्तिमान है। ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य्य के प्रकाश का परा-कासनी भाग जिसको मनुष्यों का चर्म सोख लेता है चर्म के कोलेस्टेरोल के प्रो-विटेमिन से विटेमिन-डी बनाता है और यही प्रकाश से बना हुआ विटेमिन-डी सूखा के रोग को अच्छा करने की शक्ति रखता है। इस तरह से पराकासनी प्रकाश का, चाहे सूर्य्य का हो या कृत्रिम हो, प्रभाव सीधे न होकर घुमा कर है। लेकिन पालित और धर यह बताते हैं कि सूर्य्य के प्रकाश का

अच्छा प्रभाव इसलिये भी पड़ता है कि इससे पाचन शक्ति बढ़ जाती है।

ऊपर के कथनानुसार यह पता चलेगा कि प्रो-विटेमिन-डी एर्गोस्टेरोल से भिन्न नहीं है। फिर भी जेण्ड्रासिक और केमेनीफी [1] अपने निरीक्षण से दूसरी बात बताते हैं। वे लोग इस बात का निश्चय नहीं कर पाये कि अगर कोलेस्टेरोल अरुणिन (ब्रोमिन) से मिला कर फिर अवकृत किया जाय तो वह क्यों उत्तेजित नहीं होता। यह भी कहा जाता है कि अनुत्तेजित कोलेस्टेरोल अगर उत्तेजित कोलेस्टेरोल से स्फटिकीकरण विधि द्वारा अलग कर लिया जाय तो वह कई बार फिर उत्तेजित किया जा सकता है। सूखा अच्छा करने की शक्ति उत्तेजित भाग से पूर्वोत्तेजित भाग के हटा लेने पर भी पैदा होजाती है और अरुणिनीकरण के बाद भी कोलेस्टेरोल प्रभावित हो जाता है। इन दो कारणों से जेण्ड्रासिक और केमेनीफी यह कहते हैं कि कोलेस्टेरोल स्वयं प्रो-विटेमिन नहीं है बल्कि यह पानी की उपस्थिति में प्रो-विटेमिन पैदा कर देता है। वे यह भी कहते हैं कि पानी की एक एक बूंद कोलेस्टेरोल से निकाल लेने पर प्रो-विटेमिन नष्ट होजाता है और इसके बनने की सम्भावना भी नष्ट हो जाती है और खास शोषक-पट्टिका भी नहीं मिलती जब तक कि उसमें फिर से पानी न मिलाया जाय। इन सब बातों के लिये अभी

1. Jendrassik and Kemenyffi

और प्रमाणों से पुष्टि होनी चाहिये। मैक नायर[1] को यह पता चला है कि अरुणिनीकरण से एर्गोस्टेरोल पूरा नहीं हटाया जासकता, करीब तीन प्रतिशत रह जाता है। यह भी पता चला है कि एर्गोस्टेरोल और इसके ईस्टर ही उत्तेजित किये जा सकते हैं, दूसरे पदार्थ जैसे आइसो-एर्गोस्टेरोल और नेओ-एर्गोस्टेरोल नहीं उत्तेजित किये जा सकते। ओषदीकरण और अवकरण से एर्गोस्टेरोल की विटेमिन बनाने की शक्ति जाती रहती है क्योंकि विण्डौस और ब्रंकेन[2] ने यह दर्शाया है कि एर्गोस्टेरोल परौषिद प्रकाशित करने पर भी प्रभाव-रहित होता है।

मौर्टन, हाइलब्रान और काम[3] ने एर्गोस्टेरोल के शोषण-चित्र को भिन्न भिन्न समय तक प्रदीप्त करने के पहले और पीछे देखा तो उनको यह पता चला कि यदि १५० मिनट तक प्रदीप्त किया जावे तो २६००-३००० ऑ का शोषण लुप्त हो जाता है और २३००-२६०० का शोषण जिसका अधिकतम शोषण २४७० ऑ पर होता है दृष्टिगोचर होता है, और देर तक प्रदीप्त करने पर यह नयी पट्टिका भी लुप्त हो जाती है। यहाँ तक कि ६ घंटे के प्रदीपन से विशिष्ट शोषण[4] बिलकुल नहीं होता। यह भली भांति मालूम है कि मछली का तैल प्रदीप्त करने पर सूखा अच्छा करने

1. Mac Nair
2. Windaus and Brunken
3. Morton, Heilbron and Kamm
4. Selective absorption

का गुण छोड़ देता है। मोर्टन, हाइलब्रान और काम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि कुल प्रकाश जो कि एर्गोस्टेरोल पर पड़ता है, सोख लिया जाता है और प्रकाश-रासायनिक क्रियाओं के लिये सशक्त हो जाता है। वह प्रक्रिया जिससे विटेमिन बनता है किस प्रकार की है यह अभी तक नहीं ज्ञात हुआ है। यदि निम्न प्रक्रिया के आधार पर -

✓एर्गोस्टेरोल + पराकासनी प्रकाश = विटेमिन-डी

काफ़ी मात्रा में विटेमिन पाना हो, तो बहुत देर तक पराकासनी प्रकाश 'विटा'[1] शीशे से छान कर डालना चाहिये क्योंकि 'विटा' शीशा २७५० ऑ से छोटी किरणों को छनने नहीं देता।

वेब्सटर और बोर्डिलोन[2] ने यह कहा है कि विटेमिन-डी के बनने और नष्ट होने का तापक्रम-गुणक[3] एक सा है और कम है और दोनों की प्रक्रियायें प्रकाश-रासायनिक हैं। रीरिंक और फ़ॉन विज्क[4] ने एर्गोस्टेरोल का पष्ठेन में घोल बना कर २७५० ऑ किरणों से और २५४० ऑ से प्रदपन किया और यह हिसाब लगाया कि बड़ी किरणों से १५ मिनट तक प्रभावित कर देने पर विटेमिन-डी अकेला बनता है और इस समय में आधा एर्गोस्टेरोल विटेमिन बन जाता है। अधिक विशेष प्रदीपन से धीरे धीरे

1. Vita
2. Webster and Bourdillon
3. Temperature Coefficient
4. Reerink and von Wijk

विटेमिन नष्ट हो जाता है। थोड़ी देर के प्रदीपन से जो पदार्थ मिलता है वह बहुत तेज और रवेदार होता है और अगर यह ओषजन से बचा रहे तो उसमें एर्गोस्टेरोल का मिश्रण नहीं होता। रवे ० के नीचे पिघलते हैं। हाल ही में आस्कन, बोर्डिलौन, ब्रूस, जेनकिन्स और वेब्सटर ने प्रदीप्त एर्गोस्टेरोल से शून्य-स्रवण की सहायता से और स्फटिकीकरण की विधि से एक पदार्थ अलग किया है जो बहुत सक्रिय है और ११३-११५° पर पिघलता है। उन्होंने यह नहीं कहा कि यह पदार्थ स्वच्छ विटेमिन-डी है। सम्भव है कि यह पदार्थ कोई निष्क्रिय पदार्थ हो जिसमें सक्रिय विटेमिन भी मिला हो या दोनों का संयुक्त रवा हो। यह भी सम्भव है कि एर्गोस्टेरोल के प्रदीपन से कई पदार्थ बनते हों और रवे इनमें से एक के हों। इन्हीं लोगों ने बड़ी किरणों से जांच की है। उनके प्रयोगों से यह पता चलता है कि वह पदार्थ जिसका शोषण २८०० ऑ पर बहुत है विटेमिन-डी नहीं है, जैसा कि पहिले कहा गया है। यह पदार्थ बड़ी किरणों द्वारा प्रदीप्त पदार्थ पर छोटी किरणों के प्रभाव से बन सकता है। इन लोगों ने यह परिणाम निकाला है कि एर्गोस्टेरोल पर बड़ी किरणों के प्रभाव से दो पदार्थ एक साथ बनते हैं, जिनमें से केवल एक विटेमिन-डी होता है। इससे यह पता चलता है कि इस रूपान्तर का ठीक ठीक भेद जिससे कि प्रदीपन करने पर विटेमिन-डी बनता है अच्छी तरह नहीं मालूम हुआ।

हाइलब्रान, काम और मोर्टन ने कई तैलों का शोषण चित्र लिया और उन्होंने कुछ में एर्गोस्टेरोल की शोषण-पट्टिका पायी।

कौन, डेनियल्स, और स्टीनबौक[1] ने यह दर्शाया है कि यदि कोलेस्टेरोल सिरकोन में परमांगनेत से ओषदीकृत करके साफ किया जाय, तो वह प्रदीपन से सूखा रोग का नाशक नहीं बनाया जा सकता।

प्रकाश से उतने परिमाण में जितने से सूखा रोग से पीड़ित चूहों में 'कैलशम' जमने लगे, विटेमिन बनाने के लिये कम से कम ७००-१००० अर्ग सामर्थ्य की आवश्यकता है जिससे ६ × १०−८ ग्राम विटेमिन-डी बनता है। एक रंग के प्रकाश की जैसे पारद-रेखाओं २५६०, २६५०, २८००, और २९०० आॅ की 'क्वाण्टम-उपयुक्तता'[2] किरण की लम्बाई पर निर्भर नहीं है और न प्रदीपन की गति पर। ठोस एर्गोस्टेरोल और मद्य के घोल और एर्गोस्टेरोल एसीटेट दोनों से एक ही परिणाम मिलता है। मामूली कोलेस्टेरोल की क्वाण्टम-उपयुक्तता परिवर्तनीय है और एर्गोस्टेरोल के बराबर हो सकती है।

हाल ही में मार्शल और नुडसन[3] ने यह दिखाया है कि एर्गोस्टेरोल से विटेमिन-डी के बनाने की गति प्रकाश की प्रबलता

---

1. Kon, Daniels and Steenbock
2. Quantum efficiency
3. Marshall and Knudson

से एवं जो कणटा सोख लिया जाता है उससे सम्बन्धित है, लेकिन प्रकाश की लहर-लंबाई पर आश्रित नहीं है । इस प्रयोग की सापेक्ष कणटममात्रा प्रति शोषित कणटम ०.३ अणु है, अधिक से अधिक मात्रा जो प्रदीपन से बन सकती है, वह ३५ फीसदी है ।

विटेमिन-डी उसी भाग में शोषण करता है जिसमें एर्गोस्टेरोल, और उन्हीं किरणों से जिनसे बनता है नष्ट भी हो जाता है ।

नाना-प्रकार के अनुसंधानों के बाद भी यह नहीं कहा जा सकता कि एर्गोस्टेरोल से विटेमिन-डी बनाने की क्या क्रिया है । हाइलब्रान, मोर्टन, और सेक्सटन ने केवल यह पता लगाने के लिये कि विटेमिन-डी किस वर्ग का पदार्थ है । बहुत से कोलेस्टेरोल यौगिकों का शोषण-चित्र लिया है, 'निर्वाचित शोषण'[1] तभी होता है जब पदार्थ में कम से कम दो द्वि-बन्ध[2] हों । यह प्रदर्शित किया गया है कि कोलेस्टेरीलीन का शोषण चित्र एर्गोस्टेरोल के चित्र से मिलता जुलता है और यह मालूम होता है कि एर्गोस्टेरोल के तीन द्विबन्धों में से दो की जगह वही है जो कोलेस्टेरीलीन में है । कोलेस्टीनोन और विटेमिन-डी में भी सम्बन्ध मालूम होता है । बोर्डिलोन, फिशमेन, जेनकिन्स, और वेब्सटर ने प्रदीपन करने पर जो जो रूपान्तर होते हैं उनका अध्ययन किया है । प्रदीपन किये हुये एर्गोस्टेरोल की सूखा-

---

1. Selective absorption
2. Double bond

नाशक-शक्ति की तुलना शोषण-चित्र से की गयी है और तीन पदार्थों के बनने का प्रमाण मिला है। पहले की शोषण-पट्टिका एर्गोस्टेरोल की से मिलती है जिसका 'अधिकतम' २८०० आँ पर है लेकिन इससे दूना तेज़ है। यह माना जाता है कि यह पदार्थ विटेमिन-डी है। दूसरे पदार्थ का, जो पहले को और देर तक प्रदीपन करने पर मिलता है, अधिकतम शोषण २४०० आँ पर है और सूखा नहीं अच्छा कर सकता। तीसरा पदार्थ जो दूसरे पदार्थ से बनता है, न तो सूखा अच्छा कर सकता है और न इसमें विशिष्ट शोषण ही है। इस बात के लिये युक्तियां दी गयी हैं कि प्रदीपन से एर्गोस्टेरोल सीधे विटेमिन ही बनाता है। इससे अणु का कोई ह्रास नहीं होता। अभी हाल ही में बोर्डिलोन, जेनकिन्स और वेब्सटर ने यह कहा है कि वे इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि २८०० आँ पर की शोषण पट्टिका विटेमिन-डी की नहीं है किन्तु इसके किसी विकृत पदार्थ की है। इस लहर लम्बाई पर विटेमिन का शोषण कम होता है। एर्गोस्टेरोल का शोषण चित्र अभी अनिश्चित ही है। नुडसन और मूर[2] ने कुछ प्रमाण ऐसे दिये हैं कि एर्गोस्टेरोल में सूखा-नाशक गुण मृदु रोञ्जन-रश्मियों के प्रदीपन से भी पैदा किये जा सकते हैं। क्लुजट और कोफमन[3] ने यह बतलाया है कि जब स्टीरोलों को परा-

---

1. Bourdillon, Fischmann, Jenkins. and Webster
2. Knudson and Moore
3. Clutzet and Kofman

कासनी प्रकाश में या रोञ्जन-रश्मियों में या रेडियम की किरणों में रख दिया जाय तो वे बाद को फोटोग्राफिक प्लेटों को काला कर देते हैं। हूगोनेंक और कूचर[1] ने भी ऐसा ही देखा है।

इतना सब होने पर भी एर्गोस्टेरोल से विटेमिन बनने की क्रिया निश्चित नहीं हो सकी।

हालके प्रयोगों से पता लगता है कि विटेमिन-ए बनने की सम्भावना अंधेरे में भी है। केवल उतने प्रकाश की आवश्यकता है जितने से पशुओं को देखा जा सके और जितने में उन्हें खिलाया, पिलाया जा सके। (मूर को पता लगा कि गेहूँके बीज में विटेमिन-ए नहीं होता और यह भी पता लगा कि चूहों को वह भोजन देने पर जिसमें विटेमिन-डी था पर विटेमिन-ए नहीं था, उनकी वृद्धि सन्तोष-जनक पाई गयी। यह निश्चित है कि प्रकाश विटेमिन-ए बनने की गति को तेज़ कर देता है, क्योंकि हरी पत्तियों से प्रकाश बहुतायत से मिलता है।)

प्रदीपन से भोजन पदार्थों के उत्तेजित होजाने का कारण ठीक ठीक नहीं बताया जा सका है। हाल में धर और पालित ने यह मत प्रकाशित किया है कि जब कोलेस्टेरोल, जैतून का तैल इत्यादि प्रकाश में रक्खे जाते हैं तो परौषिद बनता है और इनसे दूसरे भोजनों का ओषदीकरण होना शुरू हो जाता है। इसलिये जिन पदार्थों में विटेमिन नहीं रहता उनका प्रभाव परौषिद के

---

1. Hugounenq and Couture

कारण होता है। इस बात की पुष्टि नीचे दिये हुए प्रयोगों से होती है।

पानी में मिले हुये पदार्थों में कर्बनद्विओषिद रहित वायु ५ घंटे तक प्रवाहित किया गया। इसके बाद अधिक मात्रा में पांशुज नैलिद और तेजात्र डाल दिया गया। तब जो नैलिन निकला वह सा /१०० गन्धकोगन्धेत के घोल से नाप लिया गया। नीचे की सारिणीमें प्रयोग फल दिये गये हैं।

वस्तु	मात्रा ली गयी घ. श. म. में या ग्राम में	सा/१०० गंधको गंधेत की मात्रा (घ. श. म. में)
जैतून का तैल	३ घ. श. म.	३.२
सरसों का ,,	”	१.४
गरी का ,,	”	१.००
महुआ का ,,	”	१ २०
अंडी का ,,	”	० ९५
तिल का ,,	”	१.२०
अलसी का ,,	”	०.९०
मक्खन	०.९२ ग्राम	२ २५
नशास्ता	०.१ ग्राम	०.२०
मधुकोजन	०.१ ग्राम	०.०५
डेक्सट्रीन	०.१ ”	०.४५
द्राक्षोज	० १ ”	०.०८

प्रदीप्त किये हुये पदार्थ दूसरे पदार्थों को ओषदीकृत कर सकते थे। जिस मात्रा में वे द्राक्षशर्करा को ओषदीकृत कर सकते हैं यह मालूम किया गया।

पदार्थ	प्रतिशत द्राक्षोज को ओषदीकृत मात्रा
सरसों का तैल	५.५
गरी "	३.७
महुआ "	३.३
अंडी "	४.१
तिल "	२.३
अलसी "	०.८

इन सबसे यह पता चलता है कि जब भोजन प्रकाश में रख दिया जाता है तो वह ओषजन ले लेता है, और सम्भवतः परौषिद बन जाता है। यह परौषिद दूसरे पदार्थों से मिलने पर उनका ओषदीकरण कर देता है। परिणाम-स्वरूप प्रदीप्त पदार्थों को साधारण भोजन में मिलाने से भोजन की पाचनशक्ति बढ़ जाती है और फल अच्छा होता है।

चक्रवर्ती और धर, और पालित और धर कबूतरों को खिला कर नीचे लिखे नतीजे पर पहुँचे हैं :—

(१) ५ सप्ताह तक रंगूनी चावल खिलाने पर कबूतरों में पोलीन्यूराइटिस रोग नहीं होता यदि उनको सूर्य्यका प्रकाश मिलता

रहे। भोजन में पालक, बथुआ और टमाटर आदि के मिलादेने से उतना असर नहीं होता जितना प्रकाश से होता है। कलाद्र लोहिक उदोषिद और लोहिक हरिद उतने ही प्रभावकर होते हैं जितना कि शाक इत्यादि। तुलनात्मक प्रयोगों से पता चलता है कि सूर्य्य का प्रकाश पोलोन्यूराइटिस और बेरीबेरी को दूर करने में बहुत लाभदायक है। इससे कम प्रदीप्त जैतून का तेल है। उष्ण कटिबन्ध में बहुत से रोग प्रकाश के कारण नहीं होते। यह आश्चर्यजनक है कि डेलार[1] ने यह मालूम किया है कि जैतून और अलसी का तैल और खासकर मछली का तैल जब अंधेरे में वायु में रक्खा जाता है तो वजन में बढ़ जाता है। अगर पहले से पराकासनी प्रकाश से तैल प्रदीप्त कर लिया जाय तो उनका स्व-ओषदीकरण बढ़ जाता है पर कुछ सीमा तक बढ़कर फिर घटने लगता है। दूसरे तैलों की तुलना में ऐसा मालूम पड़ता है कि मछली का तैल मानों पहले से ही प्रदीप्त किया हुआ है। हाल ही में रूसो[1] ने यह दिखलाया है कि जैतून के तैल में घुला हुआ ०.५% एर्गोस्टेरोल ओषदीकरण की ज्यादा शक्ति रखता है यदि वायु और सूर्य्य के प्रकाश में रख दिया जाय। कोलेस्टेरोल में ऐसा नहीं होता।

ओर, हेण्डरसन और क्रिक्टन[2] ने यह देखा कि जब नौ

---

1. Delore
2. Rousseau
3. Orr, Henderson and Crichton

पशु-पक्षियों के पालन और पौधों के विकास में प्रकाश का उपयोग

सप्ताह के सूअर के बच्चे एक घंटे प्रति दिन कर्बन के प्रकाश से एक गज़ की दूरी पर रक्खे गये तो उनके शरीर में खटिकम् (कैलशम) और स्फुर बहुतायत से इकट्ठा हो गया, और मल में खटिकम् की मात्रा घट गयी। फेयरहाल[1] ने यह दिखाया है कि प्रदीप्त भोजन से चूहों के खून में खटिकम् की मात्रा उसी आयु के अन्य चूहों की अपेक्षा बढ़ गयी, जिनका भोजन प्रदीप्त नहीं किया गया था। प्रदीपन से चूहों में खटिकम् संग्रह करने की शक्ति बढ़ गयी, चाहे उनको कैसाही भोजन दिया जाय।

(प्रदीपन से मुर्गी के बच्चों के पैर शक्तिशाली हो जाते हैं। ह्यूस और पेन[2] और हार्ट, स्टीनबोक, और एल्वेजेम[3] ने यह दिखाया है कि पराकासनी प्रकाश से अंडा देने की शक्ति और उन अंडों का अच्छापन बढ़ जाता है। और, हेण्डरसन और क्रिक्टन कहते हैं कि पालतू जानवरों को सूर्य्य का प्रकाश बहुत मिलना चाहिये और जाड़े में कृत्रिम प्रकाश काम में लाना चाहिये। खेतिहरों को जानना चाहिये कि सूर्य्य के प्रकाश का प्रभाव न केवल उनके पौधों पर बल्कि जानवरों पर भी पड़ता है।)

---

1. Fairhall
2. Hughes and Payne
3. Harts, Steenbock and Elvejem

त्सूजो[1] ने पराकासनी प्रकाश का जो प्रभाव गन्ना, अनन्नास और केले पर पड़ता है उसके विषय में अन्वेषण किया है और यह मालूम किया है कि प्रकाश में गन्ना खूब बढ़ता है और उसमें शक्कर की मात्रा बढ़ जाती है।

माकेंने और डेमैसी[2] ने यह कहा है कि जब उचित प्रकार से पराकासनी प्रकाश काम में लाया जाय तो फूलों और तरकारियों की बाढ़ तेज़ हो जाती है।

शेयर्ड और हिग्गिन्स[3] ने यह दिखाया है कि बीजों के अंकुरित होने में ३२००—३९०० ऑ का प्रकाश लाभदायक है और कार्ट्ज़ पारद लैम्प की २७०० – ३२०० ऑ किरणों का प्रकाश बाधक होता है यद्यपि ये किरणें रोगों के निवारण में गुणकारी हैं।

प्रकाश का प्रेरकाणुओं और विषमाणुओं पर प्रभाव

प्रकाश के प्रभाव के आधार पर एगुलहोन[4] ने प्रेरकाणुओं (enzymes) के तीन भाग किये हैं :—

(१) सब तरह के प्रकाश में वायु से ओषदीकृत होने वाले पर शून्य में केवल पराकासनी प्रकाश से नष्ट हो जाने वाले जैसे शर्करेज़, टायरोसिनेज़, लाक्षेज़, आदि।

---

1. Tsuji
2. Maquenne and Demoussy
3. Sheard and Higgins
4. Agulhon

(२) जो सब प्रकार की किरणों से ओषजन या बिना ओष-जन के नष्ट हो जाने वाले। जैसे इमलसिन, केटेलेज़।

(३) पराकासनी प्रकाश से शून्य में नष्ट हो जाने वाले और अन्य प्रकाश से कुछ मन्द पड़ जाने वाले, जैसे रेनेट।

पिनकुसेन और उसके साथियों ने यह कहा है कि पराकासनी प्रकाश में डायस्टेज़ की शक्ति का ह्रास हो जाता है, वह चाहे जिस मात्रा में उपस्थित हो। परन्तु सूर्य्य के प्रकाश में नहीं होता। उन्होंने देखा कि डायस्टेज़ और माल्टेज़ जब सूर्य्य के प्रकाश में रक्खे जाते हैं तो नमक उनको नष्ट होने से बचा लेता है। दूसरे प्रकार के लवण भी ऐसा ही करते हैं। पेंक्रियाटिक, लालाणु, और टेका डायस्टेज़ का कार्य पराकासनी प्रकाश में जब पांशुज-नैलिद उपस्थित रहता है, तीव्र हो जाता है किन्तु माल्ट-डायस्टेज़ का कार्य मंद पड़ जाता है। इन लोगों ने यह भी दिखाया है कि वे सचेष्ट प्रेरकाणु जो यूरियेज़ में हैं सूर्य्य के प्रकाश में मंद पड़ जाते हैं और पराकासनी प्रकाश में नष्ट हो जाते हैं। लोअर्स और लोरिन्सन[1] ने माल्ट-एमाइलेज़ के गर्मी के कारण मंद पड़ने की तुलना पराकासनी प्रकाश के प्रभाव से की है। पराकासनी प्रकाश द्वारा जनित मंदता न तो 'एकाणुप्रक्रिया' के अनुसार होती है और न 'द्वयणुक प्रक्रिया' के अनुसार ही और न इसमें शुट्ज़ का नियम ही लागू होता है। इनके मतानुसार दोनों प्रकार की मंदतायें अलग अलग प्रकृति की हैं। पिनकुसेन ने

1. Luers and Lorinsen

यह बताया है कि जो डायस्टेज़ पराकासनी प्रकाश से मंद पड़ गया है, उसमें थोड़ी मात्रा में नया डायस्टेज़ डालने से तेज़ी आ जाती है। इन्होंने और इनके साथियों ने यह बताया है कि खरगोश के खून के रस की 'लायपेज़-क्रिया' प्रदीपन से बहुत क्षीण हो जाती है।

खरगोशों को पराकासनी प्रकाश में देर तक रखने पर उनकी फैगोसायटिक प्रक्रिया में जो परिवर्तन होता है उसका पता अलबेल[1] को नहीं लग सका। हाउर और पोट्टोफ़ ने यह देखा कि जानवरों को पराकासनी प्रकाश में रखने से उनमें विषमाणुओं (antibodies) के उत्पन्न होने में थोड़ा ही अंतर पड़ता है। रंगे हुये पशुओं में यह अंतर बिना रंगे हुये की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। हाउर का यह कथन है कि हैज़े और पैरा-टायफायड-ए के एग्लूटिन्स पर पराकाशनी प्रकाश का असर टायफायड के एग्लूटिन्स पर के प्रभाव से ज्यादा होता है और बेक्टीरियोलायसिनों पर और ज्यादा होता है। फ्रीडबर्जर और सीमोन[3] के अनुसार रंजित रक्त-रस (हीमोलीटिक सीरम) को पराकासनी प्रकाश में रखने पर उसके एम्बोसेप्टर में कमी पाई जाती है। ट्रायपेनोसोमों की चेष्टता प्रदीप्त होने पर शीघ्र ही कम हो जाती है। मनुष्यों का 'वैसरमन रक्तरस' और 'ज्यार्ज-धना-

1. Albela
2. Heuer and Potthoff
3. Friedberger and Seimone

त्मक-रक्तरस' पराकासनी प्रकाश में रखने से ऋणात्मक हो जाता है।

बाल्डेरी और बारकस[1] ने यह देखा है कि सूर्य्य के प्रकाश में रहने पर मनुष्य-शरीर के रक्त में क्षारता बढ़ने लगती है कूपमेन[2] ने यह बताया है कि पराकासनी प्रकाश में शरीर को रखने से शरीर के रक्त-संचालन, अधःक्षेपण बिन्दु, रक्ताणु, हीमोग्लोबिन आदि में कोई अंतर नहीं पड़ता है। क्लार्क के मतानुसार ३०००—२००० ऑ तक किरणें श्वेताणुओं की संख्या बढ़ा देती हैं। क्रोट्ज़[3] ने यह बतलाया है कि पराकासनी प्रकाश या रोञ्जनरश्मियों से रक्त में पानी बढ़ जाता है। दो घंटे बाद फिर पानी की मात्रा पहले के समान हो जाती है।

दस वर्ष हुए रिस्लर, फिलिबर्ट, और कोर्टियर[4] ने अलमुनियम के तार से उत्पन्न विद्युत् प्रकाश का जो असर कीटाणुयों पर होता है उसका निरीक्षण किया। उन्होंने यह बतलाया है कि यक्ष्मा के कीटाणु नेओन-लैम्प के प्रकाश से बहुत कुछ नष्ट हो जाते हैं यदि साथमें पिनासायनोल वर्ग के रंग भी उपस्थित हों।)

प्रकाशसे निश्चेष्टीकरण

कोई ५० वर्ष से यह ज्ञात है कि पराकासनी प्रकाश कीटाणुओं को मारने की शक्ति रखता है। निम्न बातें देखी गई हैं:—

---

1 Balderry and Barkus

2. Koopmann

3. Kroetz

4. Risler, Philibert and Courtier

(१) २९७२-२१०० ऑ तक की परा‍कासनी किरणें कीटाणु मारने में अधिक सफल हैं। ३८०० से ३००० ऑ तककी किरणें बहुत कम सफल हैं लेकिन ये किरणें चर्म में २९७० से २१००ऑ तक की किरणों की अपेक्षा अधिक घुसने वाली हैं।

(२) जो किरणें सोखली जाती हैं वे ही क्रियावान होती हैं। प्रकाशका असर जितने समय तक प्रकाश डाला जाय उस अवधि पर और प्रकाश की तीव्रता पर निर्भर है।

(३) प्रकाशका प्रोटीन पर प्रभाव पड़ता है और सम्भवतः बानजावीन समूह के अमिनो-अम्लों पर ज्यादा।

(४) कीटाणु को मारने के लिये वायु के ओषजनकी आवश्यकता नहीं है। मरना प्रकाश ही पर निर्भर है। ओषोन, या उद्जन परौषिद या किसी और पदार्थ के बनने पर नहीं।

(५) अगर द्रव पदार्थ स्वच्छ न हो, धुंधला हो तो कीटाणु कम मरते हैं।

(भिन्न भिन्न प्रकार के कीटाणुओं पर प्रकाश का प्रभाव अलग अलग पड़ता है। हैज़ा, टायफायड, पेचिश, आदि के कीटाणु तुरंत नष्ट हो जाते हैं और एन्थ्रेसिस कीटाणु, न्यूमोबेसिलस और सारसिना एल्बा देर में नष्ट होते हैं। इन सब से अधिक देर में निम्न कीटाणु नष्ट होते हैं:— टेटेनी, मेगाथीरियम, फ्लीओल, सबटीलिस और सारसीना। पेरामीसियम को कोलाई की अपेक्षा १० गुना और यीस्टको २० गुना अधिक समय

लगता है। इस बात से लाभ उठाया जाता है। जब दूध परा-कासनी प्रकाश से निश्चेष्ट किया जाता है तो लाभदायक कीटाणु तो नहीं मरते बल्कि नुकसान पहुँचाने वाले कीटाणु मर जाते हैं।

वैक्सीना वीरस पराकासनी प्रकाश से निश्चेष्ट किया जा सकता है क्योंकि नुकसान करने वाले कीटाणु लाभकर कीटाणुओं की अपेक्षा प्रकाशसे अधिक मर जाते हैं।

सरनोवोडीनु, हेनरी, और बेरोनी[1] ने यह देखा कि यक्ष्मा कीटाणुओं का पायसघोल पराकासनी प्रकाश में निश्चेष्ट हो जाता है और क्षय कीटाणु मंद पड़ जाते हैं। अन्य लोगों ने यह पाया कि दूध के ओक्सीडेज़ कीटाणु, तैलके लिपोयड विश्लेषक जीवाणु, डिप्थीरिया के विषाणु और रक्तरसके विषाणु पराकासनी प्रकाश में मंद पड़ जाते हैं।

कोब्लां और फुल्टन[2] ने कोलाई विषाणु के घोलोंको पारद-लैम्पके पराकासनी प्रकाश में रक्खा और यह मालूम किया कि १३५० ऑ तक की किरणोंमें कीटाणुओं को नष्ट करने की शक्ति है। जैसे जैसे किरण की लम्बाई बढ़ती जाती है वैसे वैसे यह शक्ति कम होती जाती है। २९७०-३६५० ऑ तककी किरणों में देर तक रखना पड़ता है। २८०० ऑ से छोटी किरणों का प्रभाव ३०५० से बड़ी किरणों का १० गुना है। कोब्लां और फुल्टन ने कोलाई के कीटाणुओं को १७००-२८००ऑ तक की

1. Cernovodeanu, Henri and Baroni
2. Coblentz and Fulton

किरणों से मारने की सामर्थ्य की गणना की और लगभग १९ × १०-¹² वाट पाया।)

ड्रेयर[1] ने यह देखा कि रश्मिचित्र के बीचका भाग कोई प्रभाव नहीं रखता पर इरीथ्रोसिन के १ १५०० अणु के घोल की उपस्थिति में प्रभाव-युक्त हो जाता है। बर्नार्ड और मारगन[2] के अनुसार जीवित पदार्थमें निश्चेष्टीकरण पैदा करना कठिन है। फिर भी घावों पर प्रकाश डालने से अच्छा फल मिलता है। लेज़र[3] ने परा-कासनी प्रकाश से सुई लगाने वाली औषधियों को निश्चेष्ट करने का यत्न किया है। जैतून, बिनौला, और बादाम के तैल चर्बी और मक्खन, इनसुलिन इत्यादि परा-कासनी प्रकाश से निश्चेष्ट हो जाते हैं।

दूधके लिये हेलब्रोनर और रेकलिंगहौसन[4] ने यह कहा है कि प्रकाश से पूरी तौर से निश्चेष्ट करना कठिन है और देर तक रखने से स्वाद बिगड़ जाता है। वे ६०° पर निश्चेष्ट करने की अनुमति देते हैं। यह हो सकता है कि प्रदीप्त करने पर दूध में विटेमिन-डी बनजाता हो और 'ए' की कमी हो जाती हो।

प्रकाश से पानी को निश्चेष्ट करने में कई लाभ हैं—

(१) पानी के गुणों में कोई अंतर नहीं पड़ता। घुली हुयी वायु और गैस पदार्थ जो स्वाद पैदा करते हैं, नष्ट नहीं होते।

1 Dreyer
2. Bernard and Morgan
3. Lesure
4. Helbronner and Recklinghausen

(२) पूर्णतः निश्चेष्टीकरण किया जा सकता है और पानी शल्य-चिकित्सा के काम में लाया जा सकता है, और मक्खन के व्यवसाय में भी ।

पराकासनी प्रकाश द्वारा प्रदीपन करने से पहले पानी को बिल्कुल स्वच्छ कर लेना चाहिये । फिटकिरी डाल कर या छान कर पानी स्वच्छ किया जा सकता है ।

उत्तरार्द्ध

प्रयाग विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला से जो गवेशषणायें प्रकाशित हुई हैं, उनमें यह बताया गया है कि परनिशस एनीमिया रोग (जिसकी प्रकृति पूरी तौर से नहीं मालूम है) शरीर में बी- और सी-विटेमिन की कमी के कारण होता है। परनिशस एनी-मिया के लक्षण लगभग वही हैं जो स्कर्वी और पेलाग्रा के हैं। स्कर्वी, परनिशस एनीमिया और पेलाग्रा की प्रारम्भिक दशामें, चमड़े का पीलापन, उदासी, विराग, मांस पेशियों का कमजोर होना, अनिद्रा, सिर का चक्कर खाना, और थोड़ी सी सांस की कठिनाई इत्यादि लक्षण दिखाई देते हैं। चमड़ा पीला और रूखा हो जाता है और उस पर नीले दाग़ पड़ जाते हैं। इसके साथ साथ पैरों और कमर के भाग में प्रायः पीड़ा होती है। इन सब रोगों में पाचन क्रिया में विकार पैदा हो जाता हैं और भूख कम हो जाती है। जीभ पर मोटी परत पड़ जाती है और बाद को रोगी के सिर में चक्कर आने लगता है और हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। रोगी शीघ्र ही मूर्छित हो जाता है और हृदय की कमज़ोरी बढ़ने लगती है।

✓सूर्यका प्रकाश परनिशस एनीमिया के लिए अत्यन्त लाभ-दायक सिद्ध हुआ है। रिकेट जिसे सूखा भी कहने हैं, शरीर में किसी पदार्थ की कमीके कारण होता है, और इसमें सूर्यके प्रकाश और पराकासनी किरणों से चिकित्सा करने से लाभ होता है।

सम्भवतः स्कर्वी, बेरीबेरी, परनिशस एनीमिया और पेलाग्रा इत्यादि का कारण विटामिन बी-और-सी—जो कि उत्प्रेरकों का काम करते हैं— के अभाव से पूरी तौर से पाचन क्रिया का न होना है। यह स्पष्ट है कि बहुत सी रासायनिक क्रियायें सूर्य के प्रकाश से तीव्र हो जाती हैं और शर्करा, चरबी, और प्रोटीन का पाचन रोशनी से बढ़ जाता है। परनिशस एनीमिया में सूर्य के प्रकाश से लाभ होने का कारण यह है कि प्रकाश से रोग के कारण बिगड़ी हुई पाचन शक्ति बढ़ जाती है।

दस वर्ष हुए, मिनोट और मुरफी[1] और कोह्न, मिनोट, औलेस और साल्टर[2] ने यह सिद्ध किया है कि परनिशस एनीमिया के रोग में कलोंजी या यकृत अधिक खिलाने से लाल रक्त की मात्रा बढ़ जाती है। यह लाभ कोई ऐसी वस्तु के कारण होता है जो कि स्तनपायी जीव समुदाय के कलेजे या यकृत में पायी जाती है, और यह अनुमान किया जाता है कि उसका रोगी के कलेजे में अभाव होता है। कोह्न, मिनोट, औलेस और साल्टर ने यह भी बताया है कि यह लाभकारक पदार्थ यकृत से कैसे निकाला जा सकता है और उन्होंने उस पदार्थ के गुणों को भी बताया है।

√डा० धर ने यह मत प्रकाशित किया है कि खास करके मुँह और पेटका कैन्सर या नासूर दूषित पाचन क्रियाके कारण होता

1. Minot and Murphy
2. Cohn, Minot, Alles, and Salter

है, और सम्भवतः स्कर्वी, बेरी बेरी और पेलाग्रा की तरह शरीर में किसी पदार्थ की कमी के कारण होता हो। बहुत सम्भव है कि कैन्सर या नासूर प्रारम्भिक दशामें विटेमिन-बी और-सी के अभाव से होता हो।

कैन्सर और विटेमिन-बी और सी की कमी

अभी कुछ दिन हुए जब से इस रोग के कीटाणु मत पर विशेष वाद-विवाद होने लगा है परन्तु अभीतक इस विषय का कोई निर्णय नहीं हुआ।

इस रोग में भी आरम्भ में क्षुधा की कमी, भोजन से घृणा, वायु दोष, खट्टापन और उदर दोष होते हैं। कुछ लक्षण ऐसे हैं जो परनिशस एनीमिया के लक्षणों से मिलते जुलते हैं। समय के साथ २ जीभ के ऊपरी भाग से बहुत कुछ एपीथीलियम नष्ट हो जाता है और श्लेष्मिक झिल्ली रूखी हो जाती है। इन लक्षणों से यह प्रकट होता है कि सम्भवतः मुँह और पेटका कैन्सर परिपाक-प्रणाली के ठीक न होने से, विटामिन की कमी से और सूर्य के प्रकाश के अभाव से – जो कि पाचनक्रिया की गति को तीव्र कर देता है होता है। यह ध्यान देने की बात है कि गरम देशों में जहाँ सूर्य के प्रकाश की अधिकता होती है, कैन्सर ठंडे देशों की अपेक्षा कम होता है यद्यपि गरम देशों के मनुष्यों को ठंडे देशोंके मनुष्यों की अपेक्षा कम और खराब भोजन मिलता है। डा० धर का यह मत है कि इसका कारण सूर्य के प्रकाश का पाचन पर

लाभप्रद प्रभाव का होना है (सूर्य के प्रकाश में चरबी, कारबोहाइड्रेट और प्रोटीन का पाचन तीव्र हो जाता है। अतएव भोजन में विटेमिन की कमी के कारण विशेष पदार्थों के अभाव से जो रोग हो सकते हैं व गरम देशों के लोगों में नहीं हो पाते क्योंकि सूर्य के प्रकाश का लाभप्रद प्रभाव पाचन पर पड़ता है।)

धरने यह मत प्रकाशित किया है कि ए- और डी-विटेमिन जो चरबी वाले भोजन में रहते हैं, चरबी के पाचन में सहायक होते हैं। जब चरबी का पाचन ठीक नहीं होता तब अपच, खट्टापन, सूखा, आँख का कष्ट इत्यादि दोष उत्पन्न हो जाते हैं। डा० धर का यह मत है कि बी-विटेमिन कार्बोहाइड्रेट वाले भोजन के ओषदीकरण या पाचन को तीव्र कर देता है। और बेरी-बेरी बी-विटेमिन के अभाव के कारण कार्बोहाइड्रेट की परिपाक-प्रणाली के बिगड़ जाने से होती है। इस मत की पुष्टि फंक और डूबिन[1] के अनुसन्धानों से होती है। इन्होंने यह सिद्ध किया है कि ओटोलाईज़ किए हुए खमीर को चूहों के भोजन के साथ देने से उन चूहों के वज़न में प्रतिशत अधिक बाढ़ होती है जिनके भोजन में कार्बोहाइड्रेट था और उनमें कम जिनके भोजन में प्रोटीन था क्योंकि बी- विटेमिन जो खमीर में वर्तमान है, प्रोटीन के बनिस्बत कार्बोहाइड्रेट के पाचन में अधिक सहायक होता है। अतएव खमीर प्रोटीन की अपेक्षा कार्बोहाईड्रेट के भोजन में अधिक लाभप्रद होता है। उसके अलावा

1 Funk and Dubin

फिण्डले[1] के अनुसन्धान से यह प्रतीत होता है कि बेरीबेरी कार्बोहाइड्रेट के परिपाक के ठीक न होने से ही होती है। यह मत कि बेरीबेरी पाचन का रोग है ओकाडा[2] और अन्य व्यक्तियों के निरीक्षण से सिद्ध होता है। उन्होंने यह सिद्ध किया है कि बी-विटेमिन के नष्ट होने से मनुष्य की पाचन-शक्ति कम हो जाती है।

चक्रवर्ती और धर महोदयों ने जो अन्वेषण कबूतरों पर किये हैं उनसे यह मालूम होता है कि जब साफ किया हुआ चावल खिलाया जाता है तब आरम्भ में पाचन का दोष उत्पन्न होता है और बाद में वही पोलीन्यूराइटिस में परिवर्तित हो जाता है। युद्ध के समय में ओडोमा का जो प्रकोप था—उसके साथ साथ सर्वदा पाचन का भी दोष लगा रहता था। ऐसा ही बेरीबेरी के आरम्भ में भी होता है। अतएव यह कहना पड़ता है कि भोजन ठीक न होने से पेट में ख़राबी, पाखाना का बहुत अधिक होना, बेरी बेरी, स्कर्वी, पेलाग्रा, परनिशस एनीमिया और और किसी किसी हालत में कैन्सर हो जाता है। ये व्याधियाँ पाचन प्रणाली से सम्बन्ध रखती हैं इस लिए इन पर सूर्य के प्रकाश और पराकासनी प्रकाश से लाभ होना चाहिए।

भारतवर्ष के भिन्न भिन्न भागों में रतौंधी एक साधारण रोग है जो निर्धन और कंगालों में बहुत होता है। हमने देखा है

1. Findlay
2. OKada

कि ख़ास करके बिहार, छोटा नागपुर और युक्त-प्रान्त के कुछ पहाड़ी भागों में ग़रीबों में अधिकतर लोग जिन्हें पूरा भोजन नहीं मिलता रतौंधी से आक्रान्त होते हैं।

आँख की व्याधियाँ और विटेमिन-ए का अभाव

छोटा-नागपुर के ग़रीब लोगों का यह विश्वास है कि भेड़ या बकरी की यकृति रतौंधी की सबसे उत्तम औषधि है। इन ग़रीबों को अंडा, मक्खन, दूध नहीं मिल सकता और वर्ष में कई मास पानी न पड़ने से हरे सागपात भी, जिनमें विटेमिन-ए रहता है, नहीं मिल सकते। अतएव ग़रीबों को रतौंधी करेटो-मेलेशिया, ज़ेरोथैलमिया आदि जो कि विटेमिन-ए की कमी के कारण होते हैं, हो जाते हैं।

डा० धर ने यह दिखानेका प्रयत्न किया है कि ल्यूकेमिया, जो कि रक्त की एक अद्भुत बीमारी है और जिसके विषय में अभी अत्यन्त कम ज्ञान है विटेमिन की कमी के कारण होती है। लेखक ने यह भी दिखाने का प्रयत्न किया है कि गरम देशों के अनेक रोग ख़राब भोजन और विटेमिन की कमी के कारण होते हैं।

यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि परनिशस एनीमिया, पेलाग्रा और स्कर्वी इत्यादि में कुछ मिलते जुलते लक्षण हैं। यह भी कहा जा चुका है कि पेट के विकार जैसे पेट आंव, क़ै का होना, दस्त का अधिक होना — आदि स्कर्वी पेलाग्रा

आवश्यक पदार्थ के अभाव के रोग और आँतों की गड़बड़ी

और परनिशस एनीमिया में पाए जाते हैं। इसके सिवाय हैमिल्टन राइट[1] ने यह प्रकाशित किया है कि बेरी-बेरी में रोगी को आरम्भ में भूख की कमी, पेट में दर्द और विकलता मालूम होती है तथा जो आरम्भिक हालत में मरते हैं उनकी नसें फूल जाती हैं, रक्त प्रवाह होने लगता है और आंतों की झिल्ली फूल जाती है।

एपिडेमिक ड्राप्सी में भी हम देखते हैं कि आँत की गड़बड़ी हो जाती है तथा क़ै, दस्त, आँव और एनामिया आदि विकार हो जाते हैं। मैककैरिसन[2] ने देखा है कि खराब भोजन से जिसमें विटेमिन-बी और-सी की कमी रहती है, पेट की, आँत-पित्त की खराबी और पेट के भीतर के परिपाक क्रिया के यन्त्र Pancreatic) में गड़बड़ी आ जाती है। ऐसे हीन भोजन से आँतों की पतली झिल्लियाँ सूखने लगती हैं जिससे पाचन व परिपव क्रिया मंद पड़ जाती है और कीटाणुओं के प्रकोप से बचने की शक्ति जाती रहती है।

कबूतर जिनको केवल साफ किया चावल दिया जाता है डाएरिया (दस्त का अधिक होना) रोग से आक्रान्त होते हैं। इसे हम विटेमिन की कमी का लक्षण समझ सकते हैं क्योंकि हम देखते हैं कि बहुधा अण्डे के पीले भाग को अलकोहोल के साथ मिलाकर देने से यह अच्छा हो जाता है। डाएरिया अथवा

---

1 Hamilton Wright

2 Mc Carrison

कोलटिस सर्वदा युद्ध-ओडेमा के आगे, बाद में अथवा साथ साथ होता है। इसका कारण सम्भवत: भोजन में प्रोटीन और एण्टी-न्यूरिटिक पदार्थ का अभाव है। कम से कम इतना कहना पड़ेगा कि तर बेरीबेरी के विषय में तो यह ठीक ही है। भोजन में उचित पदार्थ के लगातार अभाव के कारण आँत और पेट के रोग और कभी कभी नासूर हो जाते हैं।

रिकेट, सूखा या मिठुआ और चर्बीका पाचन

यह बहुत दिनों से मालूम है कि सूखा रोग भोजन में उचित पदार्थ की खराबी और अनुपयक्त भोजन से होता है। क्रानिक डाएरिया (जीर्ण दस्त) जो स्वयं खराब भोजन के कारण होता है—अकसर सूखा के पहिले होता है। भोजन की खराबी से जैसे प्रोटीन और चर्बी की कमी और कार्बोहाईड्रेट की ज्यादती से, रिकेट सूखा हो जाता है। स्टार्च की कमी भी एक कारण है। अच्छे प्रकार की चर्बी की कमी प्रोटीन की कमी की अपेक्षा अधिक ज़रूरी है। शक्कर की अधिकता से जो हानि होती है उसका कारण चर्बी के पाचन में शक्कर के कारण बाधा पड़ना हो सकता है। यह कहा जा चुका है कि चर्बी में पाये जाने वाले विटेमिन-ए और –डी चर्बी के पाचन को बढ़ा देते हैं। अतएव जब भोजन में इन विटेमिनों का अभाव होता है तब चर्बीका पाचन घट जाता है और मिठुआ या सूखा रोग हो जाने की सम्भावना रहती है।

डा० धर और सहयोगियों ने यह प्रमाणित कर दिखाया है कि वायु से या ओषजन से भिन्न भिन्न पदार्थों का जो ओषदीकरण होता है वह शक्करकी उपस्थितिमें कम हो जाता है। शक्कर स्वयं उन पदार्थों की उपस्थिति में ओषदीकृत हो जाती है। चर्बी का भी ओषदीकरण शक्कर के साथ कम होजाता है। अतएव जब शक्कर वाले पदार्थ बच्चों को बहुतायत से दिये जाते हैं तो उनके शरीर में चर्बीले पदार्थ ठीक से नहीं पचते; विशेषतः तब और भी जब विटेमिन-ए और -डी भी भोजन में अनुपस्थित रहते हों। ऐसी अवस्था में बच्चों को मिठुआ या सूखा होने की सम्भावना रहती है।

चिट्टेनडेन और अण्डरहिल[1] ने कुत्तों को केवल शाक खिला कर रखने पर अनुभव किया कि इस अवस्था में कुत्ते पल नहीं सके। जब उनको क्रेकर्स मटर और बिनोला कई महीने तक दिया गया तब उनकी अवस्था ऐसी हो गयी जिसकी तुलना ये लोग मनुष्य के पेलाग्रा से करते हैं। कुत्तों का मुख सूज गया, विरेचन हो गया और उनके चर्म की अवस्था पेलाग्रा से पीड़ित रोगियों के चर्म की भांति हो गयी।

ऊपर के कथनानुसार हम यह निर्णय कर सकते हैं कि भोजन से आवश्यक पदार्थ की कमी के कारण उत्पन्न हुये सब रोगों का जैसे स्कर्वी, बेरी-बेरी, पेलाग्रा, मिठुआ इत्यादि का संबन्ध पेट और आँत के विकार से है। लेकिन मेक-केरीसन की खोजों

---

1. Chittenden and Underhill

से हमको यह पता लगता है कि पेट के विकार विटेमिन के अभाव से होते हैं। इस बातसे धर साहेब के मतकी पुष्टि होती है कि भोजन से सम्बन्ध रखने वाले रोग भोजन में विटेमिन, ग्रन्थियों के अन्तःस्राव और पाचन शक्ति को बढ़ाने वाली चीज़ों के न रहने पर और ठीक ठीक पाचन न होने से होते हैं। धर साहेब ने यह सिद्ध किया है कि थायरायड ग्रन्थि से जो रस निकलता है उसका कार्य्य विटेमिन-ए और -डी के कार्य्य के समान है। थायरायड ग्रन्थि के कारण सब पदार्थों का पाचन और मुख्यतः चर्बी का पाचन बहुत तीव्र हो जाता है। बालकों के शरीर और मस्तिष्क के बढ़ने में थायरायड विशेष लाभकारी है। ओस्टिओ-मलेशिया, सूखा, ओस्टिओ-माइलिटिस और निर्बलता के कारण उत्पन्न हुये रोगों में भी इस ग्रन्थि के रस से लाभ होता है। बहुत से नेत्र-रोगों का कारण इस ग्रन्थि के रस का न्यूनता का होना कहा जाता है। यह भली भाँति मालूम है कि विटेमिन-ए और -डी शरीर की संवृद्धि में, और सूखा, ओस्टिओ-मलेशिया, ओस्टओ-माइलिटिस, नेत्र-रोग जैसे रतौंधी, केरेटोमलेशिया इत्यादि को रोकने में उसी प्रकार लाभकर हैं जैसे थायरायड ग्रन्थि का रस। इससे यह सिद्ध हुआ कि विटेमिन-ए और-डी और थायरायड का रस चर्बी के पाचन या ओषदीकरण को बढ़ा सकते हैं। यह ध्यान देने की बात है कि कुमारी हौजसन[1] ने इन रोगों के बढ़ जाने पर पेट में खट्टेपन का आरम्भ होना पाया

1. Miss Hodgson

है। प्रिटचर्ड[1] का यह विश्वास था कि सूखा का कारण शरीर में अम्लता का बढ़ जाना है और बर्गेस और ओसमन[2] ने तीन ऐसे रोगी बताये थे जिनके पेट में अम्लता बहुत था।

यह पूर्व ही कहा जा चुका है कि पेट और जिह्वा के नासूर और परनिशस एनीमिया का सम्बन्ध, विटेमिन के समान उत्तेजक पदार्थों के अभाव के कारण भोजन की पाचन व परिपक्व क्रिया के ठीक ठीक न होने से है, और इसी लिये डा० धर ने इन दोनों रोगों को भी उसी श्रेणी में रखा है जिनमें आवश्यक पदार्थों के अभाव के कारण उत्पन्न हुये अन्य रोग माने जाते हैं।

ल्यूकेमिया और हौजकिन-रोग

ल्यूकेमिया रक्त का एक विचित्र रोग है जिसकी उत्पत्ति के कारण का कोई पता नहीं है। इसका मुख्य लक्षण रक्त में श्वेताणुओं का बढ़ जाना है। इसके लक्षण अप्रत्यक्ष रूप से उत्पन्न होते हैं। तिल्ली के बढ़ जाने से उदर का बढ़ता जाना प्रथम प्रतीत होता है और फिर पीलापन, धड़कन, सांस की कमी इत्यादि जो परनिशस एनीमिया के लक्षण हैं उत्पन्न होने लगते हैं। भीतरी अवयवों से रक्त-प्रवाह होने की प्रवृत्ति रहती है और नेत्र से रक्त-प्रवाह होता है। आंतों के विकार, वमनेच्छा, वमन और अतिसार बार बार होते हैं। परनिशस एनीमिया की भाँति अनियमित पायरेक्सिया

---

1 Pritchard

2. Burgess and Osman

देखी गयी है और प्रायः रात्रि में ज्वर १०३° हो जाता है. परनिशस एनीमिया की भांति इस की भी चिकित्सा में सबसे अच्छा फल संखिया और सोडियम केकोडिलेट के सेवन से होता है। हौजकिन के रोग का जिसकी प्रकृति ल्यूकेमिया सी है, मुख्य लक्षण लिम्फेटिक ग्रन्थियों का बढ़जाना और परनिशस एनीमिया के कुछ लक्षणों का उत्पन्न हो जाना है। इन दोनों रोगों का कारण अनिश्चित ही है। ल्यूकेमिया को भांति इसमें भी रक्त प्रवाह की सम्भावना रहती है और ज्वर बहुधा १००-१०३° तक बढ़ जाता है। इस रोग में भी संखिया लाभदायक है। परनीशस एनीमिया की भाँति, दूध, और इसके अन्य पदार्थ, अंडा, अखनी इत्यादि ल्यूकेमिया में भी दिये जाते हैं। ग्रौइट्ज़ ने दूध और शाक का भोजन देना बताया है। डा० धर के मत से ल्यूकेमिया और हौजकिन रोग विटेमिन-बी और -सी के अभाव के कारण हो जाते हैं।

एडीसन रोग और विटेमिन-ए और-डी

डा० धर ने यह संकेत किया है कि एड्रीनल रस का कार्य्य मज्जिक पदार्थों के पाचन को तीव्र कर देना है। एड्रीनल रस के मुख्य अंश एपीनेफ्रिन का कार्य पाचन को और शरीर के तापको बढ़ाना है। इसके अतिरिक्त विटेमिन-ए और-डी की भांति एपीनेफ्रिन सूखा और ओस्टिओ-मलेशिया की चिकित्सा में भी लाभकारी सिद्ध हुआ है। वास्तव में

ओस्टिओ मलेशिया को कुछ लोग एड्रीनलकी विशेष चेष्टा के कारण होना समझते हैं।

कुछ अन्वेषक एडीसन-रोग को भी एड्रीनल ग्रन्थि की विशेष चेष्टा के कारण उत्पन्न हुआ मानते हैं। यह रोग धीरे धीरे उत्पन्न होता है। दुबलता, विराग विरेचन, मलावरोध इत्यादि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इस रोग में चिकित्सा असफल होती है। एड्रीनल ग्रन्थि का रस बहुत आशातीत है और बहुत से चिकित्सकों ने इससे रोगमें लाभ भी पाया है। एड्रीनल ग्रन्थि निकाल देने से दुर्बलता, मानसिक विराग, हृदय की कमज़ोरी, सांस की कमी इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते हैं। साथ साथ वमन और विरेचन भी होता है। ऊपर कहे हुये सब लक्षण एडीसन-रोग में भी पाये जाते हैं। यह भी कहा गया है कि एड्रीनल का रस मज्जिक पदार्थों के पाचन को उत्तेजित कर देता है और इस बात में विटेमिन-ए और डी के समान है। जिस प्रकार एड्रीनल का रस एडीसन-रोग की एक ओषधि है, उसी प्रकार विटेमिन-ए और-डी भी इस रोग में लाभकारी होना चाहिये। डा० धर वैद्य लोगों को इस रोग में उन पदार्थों को जिनमें विटेमिन-ए और- डी की मात्रा अधिक है प्रयोग में लाने के लिये आग्रह करते हैं। फंक और फॉन शोनबोर्न [1] ने यह देखा कि कबूतर के खून में मधुकोजन की मात्रा १·१७ % और चीनी की मात्रा ०·१ % रहती है, पर जब उनको विटेमिन-रहित भोजन दिया जाता है

1. Funk and Schonborn

तो मधुकोजन की मात्रा ०.४८ % और चीनी की मात्रा ०.१५ % हो जाती है। जिस कबूतर को चीनी अधिक खिलायी गयी, उसके रक्त में मधुकोजन ४.५ % और चीनी ०.१५ % मिली। नशास्ता की अधिकता से रक्त में केवल ०.२६ % चीनी मिली। अंतिम प्रयोग में विटेमिन-बी के मिला देने से अच्छे कबूतरों की सी अवस्था हो जाती है। फंक ने इन परिणामों को कई बार दुहराया था। कबूतरों की बेरी-बेरी में जो 'मधुकोमेहता'[1] पायी जाती है वह अभी तक मनुष्यों की बेरी-बेरी में नहीं पायी गयी। इसके अतिरिक्त फंक ने उन पदार्थों के प्रभाव का भी अनुशीलन किया जिनका प्रभाव शर्करामय पदार्थों के पाचन पर भली प्रकार अवगत है। उनमें से द्राक्षशर्करा, फ्लोरिज़िन, एड्रीनेलिन, पिट्यूट्रिन, थायरायड, और पैराथायरायड का जो प्रभाव कबूतरों की बेरीबेरी पर पड़ता है उसकी खोज हृष्टपुष्ट और चावल खिलाये हुये, कबूतरों पर की गयी थी। थायरायड और एड्रीनेलिन दोनों से कबूतरों की आयु घट गयी। पैराथायरायड का प्रभाव कुछ भिन्न था। थायरायड से यकृति में रक्त-शर्करा बढ़ जाती है। परन्तु पैरा-थायरायड से मधुकोजन और अमिनोअम्ल की मात्रा बढ़ गयी और रक्त-शर्करा पर कोई प्रभाव न पड़ा। थायरायड और एड्रीनेलिन से कबूतरों में जो मधुकोमेहता हो जाती है, उसका वर्णन पहले किया जा चुका है। कबूतरों की बेरीबेरी का मधुकोमेहता से समन्वय मेक-केरीसन के इस निरीक्षण से किया जा

1. Glycosuria

सकता है। उन्होंने यह देखा कि एवियन बेरीबेरी में 'सुप्रा-रीनल बहुत बढ़ जाता है और अतः एड्रीनल की मात्रा बहुत बढ़ जाती है। यह स्पष्ट हो गया कि बेरी-बेरी में शक्कर का पाचन ठीक प्रकार नहीं होता और फल यह होता है कि जीव को प्रोटीन और चर्बी पर निर्भर रहना पड़ता है और एड्रीनेलिन जो चर्बी के पाचन को तीव्र करती है बढ़ जाती है।

संक्रामक-ड्रोप्सी का मुख्य लक्षण 'एनासरका'[1] का अकस्मात् पैदा हो जाना है। इसके होने से पूर्व ज्वर, विरेचन, वमन इत्यादि हो जाते हैं और कभी कभी अंतरा, एनीमिया और उदर दोष हो जाते हैं। ओडीमा इसके प्रकोप का मुख्य चिह्न है। यह रोग भी और रोगों की भांति भोजन संम्बधी रोग है और विटेमिन बी के अभाव से हो जाता है। इन रोगों में भी पैंक्रियेटिक रस का प्रभाव लाभकर होना चाहिये।

बेरी-बेरी, संक्रामक ड्रोप्सी और पैंक्रियेटिक स्राव

पेलाग्रा, बेरीबेरी, एपीडेमिक ड्रोप्सी, स्प्रू, पेचिश बच्चों का पित्त संबन्धी सिरोमिस, पाइनस पहाड़ी विरेचन इत्यादि रोग उष्ण कटिबंन्ध प्रदेश के रोग माने जाते हैं। हम भली भांति जानते हैं कि बेरी-बेरी और पेलाग्रा भोजन सम्बन्धी रोग हैं। इसका भली भांति निर्णय हो चुका है कि बेरीबेरी भोजन में विटेमिन-बी के अभाव के कारण होती है। पूर्व के विवरण में यह

1. Anasarca

डाक्टर धर ने यह विचार प्रकट किया है कि पेलाग्रा के लक्षण स्कर्वी और अनीमिया से मिलते-जुलते हैं। गोल्डबर्जर[1] और उनके सहायकों के अन्वेषणों से यह पता चला है कि बहुत सम्भव है कि यह रोग शरीर में भोजन की कमी के कारण से होता हो। वोग्टलिन[2] की यह सम्मति है कि यह रोग कई आवश्यक खाद्य पदार्थों की कमी के कारण होता है।

पेलाग्रा के आरम्भ में दुर्बलता और खिन्नता उत्पन्न होती है। रोगी की दृष्टि कम हो जाती है। शिर दर्द, चक्कर, कमर व जोड़ों में दर्द उत्पन्न हो जाता है। रोगी चिड़चिड़ा निर्बुद्धि और उदास हो जाता है। प्रथम जिह्वा पर एक परत पड़ जाती है। फिर जिह्वा पर घाव हो जाता है। मसूढ़े फूल आते हैं और उनमें से रक्त आने लगता है। वमन हो जाता है। क्षुधा बिगड़ जाती है। पेड़ू में दर्द पैदा हो जाता है। यह कुल लक्षण स्कर्वी और अनीमिया के लक्षणों से मिलते-जुलते हैं। इसके अतिरिक्त जैसा वेडर[3] ने कहा है, स्कर्वी और पेलाग्रा में आंतों के घाव एक समान होते हैं। विरेचन, आंत की सूजन व घाव, और झिल्लियों से रक्त प्रवाह स्कर्वी, परनीशस अनीमिया और पेलाग्रा तीनों में होते हैं। इसके अतिरिक्त नाड़ी विषयक लक्षण स्कर्वी और पेलाग्रा में एक ही समान होते हैं।

---

1. Goldberger
2. Voegtlin
3. Vedder

पेलाग्रा और बेरी-बेरी में कुछ समानता है। यह कहा जा चुका है कि बेरी-बेरी में नाड़ियों के कुछ चालक कोष्ठों का विनाश हो जाता है। रोबर्ट्स[1] ने पेलाग्रा में रीढ़ की नस के चालक कोष्ठों के विनाश का वर्णन किया है। इससे यह पता चलता है कि पेलाग्रा और बेरी-बेरी में भी कुछ समानता है और यह सम्भव है कि यह रोग स्कर्वी और बेरी-बेरी के मेल से होता हो। इस कारण डा० धर की यह सम्मति है कि पेलाग्रा विटेमिन-बी और -सी के अभाव के कारण होता है। उनका वैद्यों से अनुरोध है कि रोग के आरम्भ में सूर्य के प्रकाश से चिकित्सा करने का यत्न करें। भारत वर्ष के कई प्रदेशों में निर्धन व्यक्ति मक्के पर ही निर्वाह करते हैं और निकृष्ट प्रोटीन खाते हैं। उनके भोजन में विटेमिनों का अभाव रहता है। फिर भी पेलाग्रा का रोग कम होता है। उत्तरी बिहार में कुछ रोगी मिले थे। इसका कारण यह है कि इस देश में सूर्य का प्रकाश बहुत है जो पेलाग्रा को होने से रोकता है। कोई कोई पेलाग्रा को चर्म का 'सूर्य्य कोप' मानते हैं। पेलाग्रा का पुराना नाम सूर्य रोग था, पर हम लोगों का यह विश्वास है कि सूर्य के प्रकाश से पेलाग्रा में लाभ होगा, क्योंकि प्रकाश से पाचन बढ़ जाता है। इटली और अन्य देशों में पेलाग्रा वसन्त ऋतु के आरम्भ में होता है। डा० धर ने यह कहा है कि इसका कारण शीतकाल के भोजन में विटेमिन का कम हो जाना, और सूर्य के प्रकाश का घट जाना है।

1. Roberts

इसमें सहायक होते हैं। जिन घरों में लोग अंखुयेदार चने या अन्य नाज खाया करते थे, उनमें किसी को रोग नहीं हुआ। यह एक विचित्र बात है कि भारतवर्ष के श्रमजीवी जो कच्ची चीज़ें जैसे—प्याज़, मूली, लौकी, चना, मक्का इत्यादि खाते हैं, उनको भोजन सम्बन्धी रोग, दांत के रोग इत्यादि उतने नहीं होते, जितने उन मध्यम श्रेणी के लोगों को होते हैं, जिनको दफ़्तर आदि में नौकरी करनी पड़ती है, और जिन्हें प्रकाश कम मिलता है। इसके अतिरिक्त इन लोगों को अंडा, मछली, मांस, मक्खन, दूध इत्यादि सुन्दर भोजन नहीं मिल सकते। श्रमजीवियों की भांति यह लोग कच्चा भोजन नहीं कर सकते। फलतः इनको सदैव पाचन और भोजन सम्बन्धी रोग हुआ करते हैं।

एपेल्टन[1] के अनुसार लैब्राडर में लोग सदा बेरीबेरी, ओडीमा, स्कर्वी, रतौंधी आदि से ग्रसित रहते हैं, क्योंकि वे निर्धन हैं और अच्छा भोजन नहीं पा सकते। इसके अतिरिक्त लैब्राडोर में सूर्य का प्रकाश भी कम होता है।

पेलाग्रा और विटैमिन-बी और-सी

पेलाग्रा उष्ण कटिबन्ध का रोग है। इसकी उत्पत्ति के विषय में बहुत वाद-विवाद हो चुका है। अन्वेषकों का एक समूह कहता है कि यह एक छूत वाला संक्रामक रोग है। परन्तु जब भोजन के विकार से शरीर निर्बल हो जाता है, तभी इस रोग से लोग ग्रसित होते हैं। दूसरे

1. Appleton

लोग यह कहते हैं कि यह रोग स्कर्वी और बेरीबेरी की भांति विटेमिन के अभाव से होता है। यह ठीक-ठीक नहीं मालूम कि किस विटेमिन के अभाव से यह रोग हो जाता है। यह इङ्गित किया गया है कि पेलाग्रा मक्के के प्रोटीन ज़ाइन में ट्रिप्टोफैन और लायसिन के अभाव के कारण होता है। पहली वस्तु के पाचन पर प्रभाव विलकौक और होपकिन्स[1] ने दर्शाया था और दूसरे का ओसबोर्न और मैंडल[2] ने। दूध, अंडा, पनीर या मांस को अधिक मात्रा में खाने से पेलाग्र का प्रकोप सदा कम होगया है परन्तु यह पता नहीं कि लाभ इन पदार्थों में स्थित ट्रिप्टोफैन से हुआ था या किसी और पदार्थ से। कुमारी चिक और कुमारी ह्यूम[3] ने उन प्रयागों का वर्णन किया है जिनमें उन्होंने बन्दरों को ऐसा भोजन दिया जिसमें प्रोटीन तो एकमात्र 'ज़ाइन'[4] था परन्तु सभी विटेमिन बहुत थे। इनमें पेलाग्रा से मिलते-जुलते लक्षण उत्पन्न हो गये। जब एक को छैना (केसीनोजन) दिया गया तो सब लक्षण दूर हो गये पर फिर भी यह पता न चला कि ट्रिप्टोफैन से लाभ हुआ या किसी और पदार्थ से। इस अमिनो-अम्ल से लाभ तो हुआ है परन्तु रोग का निवारण नहीं हो सका।

---

1. Willcock and Hopkins
2. Osborne and Mendel
3. Miss Chick and Miss Hume
4. Zein

कहा जा चुका है कि विटेमिन-बी शक्कर के पाचन को उत्तेजित करती है। इसके अतिरिक्त यह भली भांति ज्ञात है कि पैंक्रियेटिक रस मधुमेह की चिकित्सा में बहुत लाभकारी है। अतएव यह मत प्रकाशित किया गया है कि विटेमिन-बी की भांति पैंक्रियेटिक रस भी शक्कर के पाचन को उत्तेजित करता है। फिंडले साहेब का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि बेरीबेरी शक्कर के पाचन के दूषित हो जाने से होती है। अतएव बेरीबेरी की चिकित्सा में इनसुलिन से लाभ होने की सम्भावना पायी जाती है। इसके अतिरिक्त विटेमिन-बी से परिपूर्ण भोजन बहुमूत्र रोग में लाभकारी होना चाहिये। यह ध्यान में रखना चाहिये कि बहुमूत्र रोग उष्ण कटिबन्ध में बहुतायत से होता है। मुख्यतः उन लोगों को होता है जिनको बहुत बैठा रहना पड़ता है। उष्ण-कटिबन्ध के अधिकतर प्रदेश निर्धन हैं और जीवन निर्वाह के लिये वहाँ के निवासी सस्ते शक्कर वाले पदार्थों का उपयोग करते हैं। अगर भोजन में विटेमिन-बी का अभाव हो तो या तो बेरी-बेरी या मधुमेह हो जाता है। यह न भूल जाना चाहिये कि जब शक्कर वाले पदार्थ बहुतायत से उपयोग में लाये जाते हैं तो पैंक्रियस रस की अधिक खपत होती है और इस कारण बहुमूत्र रोग होने की संभावना होगी। यह उचित है कि मधुमेह रोग भी बेरी-बेरी की भांति उष्ण कटिबन्ध का रोग माना जाय।

यद्यपि मेगनस लेवी[1] जई के आटे (ओटमील) से मधुमेह-

---

1. Magnus-Levy

शोधक वस्तु निकालने में असफल रहा, बोरुट्टो [1] को पता लगा कि शरीर से अलग किये हुये हृदय में मधुकोजन का विभाजित होना पैंक्रियस के रस, यीस्ट और उसके रस के कारण रुक जाता है और जौ या जई का अर्क मनुष्यों और कुत्तों के मूत्र में चीनी की मात्रा कम कर देता है। भारतवर्ष में भोजन में चीनी की मात्रा अधिक होनेसे ऐसी अवस्था हो जाती है जिससे बहुमूत्र रोग हो जाता है। यह अवस्था उस मधुमेह से मिलती जुलती है जिसे फंक [2] ने कबूतर के बेरी-बेरी रोग में भी देखा था।

डा० धर ने यह मत प्रकाशित किया है कि विटेमिन-बी के अभाव से पाचन-क्रिया हीन हो जायगी और अम्लता बढ़ जायगी और इस अम्लता के कारण शरीर में पानी बहुतायत से जमा होने लगेगा। यह भलीभांति मालूम है कि आर्द्र बेरी-बेरी में शरीर के कई भागों में पानी रुका रहता है और वह भाग सूज जाता है। अतएव यह प्रतीत होता है कि बेरीबेरी में सूजन अम्लता के कारण होती है। अतः क्षार-पदार्थ द्वारा चिकित्सा करने से लाभ होगा। यह बता देना चाहिये कि बेरीबेरी चावल खानेवाले मनुष्यों को अधिक होती है।

संक्रामक ड्रोप्सी के जो प्रकोप हमारे संयुक्तप्रांत और बंगदेश में हुये हैं, उनके देखने से यह पता चला है कि दूषित भोजन और विटेमिन के अभाव से ही यह रोग होता है। तरी और गंदगी

---

1. Boruttau
2. Funk

स्प्रू या साइलोसिस आंत के फूलने का रोग है जिसका चिह्न जिह्वा पर घाव का होना और पीला एवं झागदार मल का होना है। चीन के डाक्टर 'मिलर'[1] की यह धारणा है कि यह रोग सुरक्षित और डिब्बों में बन्द मांस के खाने से होता है। इस रोग में जिह्वा पर फलक पड़ जाते हैं, जो आप ही आप लुप्त हो जाते हैं। कुछ दिनों में जिह्वा की ऊपरी झिल्ली हट जाती है, जिह्वा फट जाती है, मसूढ़े फूल जाते हैं। यह लक्षण पेलाग्रा, परनीशस अनीमिया और स्कर्वी के लक्षणों के समान ही हैं।

स्प्रू और विटेमिन बी-और-सी

इस रोग में दूध, फल, अखनी और मांस के खिलाने से लाभ हुआ है। डाक्टर धर ने यह मत प्रकाशित किया है कि उष्ण कटिबन्ध का यह रोग अनीमिया की भांति भोजन में विटेमिन-बी और सी-के अभाव में होता है।

विटेमिनों की कमी और उदर दोष

हम लोगों ने पहले ही कह दिया है कि उदर दोष भोजन में विटेमिन के अभाव से होता है। पेचिश उष्ण कटिबन्ध प्रदेशों में बहुत होती है जहां जनता को अच्छा और पूरा भोजन नहीं मिलता। बहुधा यह रोग भोजन में विटेमिन की कमी के कारण होता है। यह कहना ठीक

---

1. Dr. Miller

हवा के बाद बहुत अच्छे रहते हैं और जाड़े के अँधेरे के बाद वसंत में अन्यमनस्क रहते हैं। यह सम्भव है कि जाड़े के भोजनीय पदार्थों में विटेमिन कम रहते हों और प्रकाश भी कम मिलता है जिसके कारण वसंत के आरम्भ में शिथिलता ज्ञात होती है। अमरीका के आदि निवासियों का वसन्त के आरम्भ में शिथिल होजाना भी इसी कारण से हो सकता है।

हुल्डशिन्सकी[1] ने टेटेनी रोग में सूर्य के प्रकाश से चिकित्सा की है और सूखा अच्छा करने में भी सफलता पायी है। हार्ट, स्टीनबौक, लेपकोव्सकी और हालपिन[2] ने मुर्गी के बच्चों के बढ़ने पर प्रकाश का लाभयुक्त प्रभाव देखा है। ह्यूस[3] ने यह अनुभव किया कि जब मुर्गी के बच्चों को उचित भोजन तो दिया गया और किन्तु शीशे से छने हुये प्रकाश में उन्हें रक्खा गया तो उनमें सूखा रोग के लक्षण दिखाई देने लगे। वे बच्चे जिनको वैसा ही भोजन और सूर्य का प्रकाश प्रतिदिन कुछ घंटों तक मिला, अच्छे हो गये। क्रेमर और ड्रू[4] ने चूहों को विटेमिन-ए रहित भोजन देकर और अँधेरे में रख कर यह देखा कि उन चूहों की अपेक्षा जिनको वैसाही भोजन देकर प्रकाश में रक्खा गया था इन चूहों में रक्त की मात्रा कम हो गई। पारदवाष्प लैम्पके प्रकाश में रखने से रक्त की मात्रा पूरी हो गई।

---

1. Huldschinsky
2. Hart, Steenbock, Lepkovsky and Halpin
3. Hughs
4. Cramer and Drew

इन परिणामों से यह प्रतीत होता है कि शरीर की वृद्धि के लिये सूर्य का प्रकाश और कृत्रिम प्रकाश भी बहुत उपकारी है और सूखा रोगका होना इससे रुक सकता है। अतएव प्रकाश का वही कार्य है जो विटेमिन-ए और-डी का है।)

प्रकाश द्वारा शर्करामय पदार्थों की अपेक्षा मज्जिक पदार्थों का ओषदीकरण अधिक बढ़ जाता है। अतएव प्रकाश सूखा रोग में बहुत लाभदायक है यद्यपि बेरी-बेरी, मधुमेह और स्कर्वी में इतना लाभदायक नहीं है। परंतु जैसा हमने प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया है कि प्रकाश में वायु से भोजन के तीनों भाग, शक्कर, चर्बी और प्रोटीन, अधिक ओषदीकृत होते हैं, अतः हमारी यह धारणा है कि प्रकाश बेरीबेरी, एपीडेमिक ड्राप्सी स्कर्वी, पेलाग्रा रोग, नासूर, मधुमेह, गठिया आदि अन्य रोगों में भी लाभकारी सिद्ध होगा।

(प्रयाग की प्रयोगशाला में कबूतरों पर किये गये प्रयोगों से यह प्रतीत होता है कि इन चिड़ियों को जब रंगूनी चावल २४ दिन तक दिया गया और प्रकाश मिला तो पोलीन्यूराइटस और नेत्र रोग नहीं हुये। चावल के साथ शाक पोलीन्यूराइटस और नेत्र रोग को रोकने में प्रकाश से कम हितकारी सिद्ध हुये। कलार्द्र लोहिक उदौषिद और लोहिक हरिद का प्रभाव शाक के बराबर ही है।)

इन सब बातों से लेखक को यह प्रतीत होता है कि विटेमिन, अन्तःग्रन्थियों का रसस्राव और प्रकाश तीनों पाचन में एकही

कारण अबतक एक रहस्य ही है। दूध जिसमें खटिकम् है दिया जाता है, मुख्यतः जब रक्त-प्रवाह अधिक होता हो।

बहुत सम्भव है कि हेमोफिलिया और परपुरा दोनों विटेमिन-सी के अभाव से होते हों।

हाल ही में हेमोफिलिया में थायरोयड के उपयोग से लाभ हुआ है।

उष्ण कटिबन्ध के पंकिल व्रण

उष्ण कटिबन्ध प्रदेशों के निर्धनों को जो गन्दी जगहों में रहते हैं, हो जानेवाले नाना प्रकार के घाव रहस्यमय हैं। जीर्ण व्रण उचित सावधानी न होने से हो जाते हैं। शीघ्रता से बढ़ने वाले घावों से मृत्यु हो जाती है। किन्तु आरम्भ में पता लग जाने पर शल्य-चिकित्सा द्वारा उपचार किया जा सकता है।

धीरे-धीरे बढ़नेवाले घावों में कुछ कीटाणु-नाशक द्रव्यों से लाभ हुआ है। जब घाव बढ़ जाता है तब चर्म काट देने से लाभ होता है। केवल अच्छा भोजन और पुष्ट पदार्थ ही इसकी दवा है। यह प्रतीत होता है कि विटेमिन के अभाव के कारण उचित पोषण न होने से और अच्छा भोजन न मिलने से शरीर पर सर्व कीटाणुओं का आक्रमण होने लगता है।

यह भली भांति निश्चित हो चुका है कि मिठुआ रोग सूर्य के प्रकाश से दूर किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त उष्ण

कटिबंध के प्रदेशों में प्रायः यह रोग होता भी नहीं है यद्यपि इन प्रदेशों में ग़रीब बालकों को उचित और पूरा भोजन नहीं मिलता। यह देखा गया है कि परनीशस एनीमिया की भी चिकित्सा प्रकाश से सफलता के साथ की जा सकती है। यह भी प्रतीत होता है कि प्रकाश से बेरी-बेरी, स्कर्वी और पेलाग्रा आदि अन्य रोगों में जो कि विटेमिन के अभाव से होते हैं, लाभ होगा। भारत और चीन ऐसे उष्ण कटिबन्ध के प्रदेशों में कुछ दीनता के कारण और कुछ शिक्षा के अभाव के कारण बहुधा लोगों के भोजन में विटेमिन उचित अंश में नहीं रहते। परिणाम-स्वरूप स्कर्वी, बेरी-बेरी, और पेलाग्रा, और विटेमिनों के अभाव से होने वाले अन्य रोग बहुतायत से हो जाते हैं परंतु यह निश्चय है कि यदि यहां सूर्य्य का प्रकाश जो इस कमी को पूरा करने वाला है, न होता तो इनका प्रकोप और अधिक होता। हमारा यह अनुरोध है कि वैद्यगण पेलाग्रा, यक्ष्मा और अन्य रोगों की चिकित्सा में सूर्य के प्रकाश का जितना अधिक प्रयोग करें उतना ही अच्छा है।

प्रकाश और पाचन सम्बन्धी व्याधियाँ

फिनलेंड के एरस्ट्रोम[1] साहब का कथन है कि "हमलोग पत-झड़ की ऋतु में (औटममें) गीष्म ऋतु के प्रकाश और खुली

---

1. Ehrstrom

इन परिणामों से यह प्रतीत होता है कि भोजन के गुण दोषों का स्वास्थ्य पर बहुत प्रभाव पड़ता है। यह संभव है कि जिलेटिन, मक्का आदि का पाचन ठीक से नहीं होता हो, जिससे आंतों में जलन होती है और वायु बढ़ती है, और उदर-दोष हो जाता है।

शिशुओं में पित्त-यकृत-रोग, पोनोस और विटेमिनों का अभाव

भारतवर्ष के बड़े-बड़े नगरों में एक वर्ष से छोटे बच्चों को एक प्रकार का रोग हो जाता है, जिसका सम्बन्ध यकृत से है। इस रोग में मतली, वमन, हरारत, मल का न होना, चिड़-चिड़ापन, प्यास, शिथिलता आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। परीक्षा करने पर यकृति बढ़ी हुई मिलती है। दस्त पीले और मूत्र काला आता है। प्रयाग में कई बच्चे भयंकर रोगी मिले, जो विटेमिन वाले भोजन देने से अच्छे हो गये। भारतवर्ष में बच्चों को उबाला दूध पिलाया जाता है, जिससे विटेमिन की मात्रा कम हो जाती है। परिणाम-स्वरूप, उनको ऐसा भोजन मिलता है, जिसमें विटेमिन-बी की मात्रा कम होती है और फल यह होता है कि विटेमिन की कमी के कारण यह रोग हो जाया करता है।

यूनानी द्वीप समूह के गंदे और निर्धन स्पीज़िया और हाइड्रा टापू में पोनोस नाम का एक रोग होता है, जिसका वर्णन केरेमिटसाज़ और स्टेफोनोस[1] ने किया है। पोनोस[2] भारत के

1. Karamitsas and Stephonos
2. Fonos

शिशुओं के पित्त-यकृति रोग से मिलता-जुलता है। इसी की भांति पोनोस रोग से भी बच्चे ही ग्रसित होते हैं। आरम्भ में शिथिलता आ जाती है और चर्म पीला पड़ जाता है, जो गहरा पड़ जाता है। ज्वर हो जाता है और तिल्ली बढ़ जाती है। बदहज़मी, विरेचन, पेचिश आदि भी उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ दिनों पीछे ओडीमा हो जाता है और रक्त-प्रवाह मुख्यतः मसूढ़ों से होने लगता है। किसी-किसी रोगी को फोड़ा और सरजन हो जाता है। बहुत सम्भव है कि इस रोग की उत्पत्ति विटेमिन-बी के अभाव से हो।

परपुरा, हेमोफिलिया और विटेमिन-सी का अभाव

शरीर में एक प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाने से चर्म और झिल्ली से रक्त-प्रवाह होने लगता है। इस रोग को परपुरा[1] कहते हैं। कभी-कभी कुल झिल्लियों से रक्त-प्रवाह होने लगता है और रोग के प्राण-घातक हो जाने की सम्भावना रहती है। मूत्र-पिण्ड, थैली, अँतड़ी, प्रदर, फुफ्फुस (रक्त पिण्ड) से रक्त-प्रवाह होने लगता है और रक्त की कमी के कारण मृत्यु की सम्भावना रहती है।

हेमोफिलिया[2] रोग पैतृक या स्वाभाविक रोग है, जिसमें सहसा रक्त-प्रवाह होने की सम्भावना रहती है। इस रोग का

1. Furpura
2 Haemophilia

कार्य करते हैं और उचित अवस्था में एक दूसरे के स्थानापन्न हो सकते हैं। विकास, वृद्धि और प्रजनन शक्ति के लिये इन तीनों में से कम से कम एक का होना अत्यंत आवश्यक है। इस तत्त्व के समझ लेने पर हम यह जान सकेंगे कि सूर्य्य का प्रकाश हमारे लिये कितना लाभकर है। समस्त प्राणियों के जीवन का यह आधार है। प्रकृति की यह सर्वोत्कृष्ट विभूतियों में से है। इसका उपभोग करना सबका जन्मसिद्ध अधिकार है।

Printed by Vishwa Prakash at the Kala Press Allahabad.

کتب خانہ

جامعہ عثمانیہ

۱- اراکین مجلس اعلیٰ، مجلس اوقاف، مجلس انتظامی، مجلس شعبہ جات و نصاب پانچ کتابیں ایک ماہ تک اپنے پاس رکھ سکیں گے۔

۲- اساتذۂ جامعہ عثمانیہ و کلیہ جات ملحقہ و گزیٹڈ عہدہ داران جامعہ اور اراکین دارالترجمہ دس کتابیں ایک ماہ تک اپنے پاس رکھ سکیں گے۔

۳- طلبائے رجسٹر شدہ دو کتابیں، بی۔ اے اور انٹرمیڈیٹ کے طلبہ تین کتابیں، ایم۔ اے، ال ال بی و تحقیقاتی جماعتوں کے طلبہ پانچ کتابیں دو ہفتہ تک اپنے پاس رکھ سکیں گے۔

۴- مدت مقررہ پر کتابیں واپس نہ ہوں تو طلبہ سے بحساب ایک آنہ یومیہ فی کتاب جرمانہ لیا جائیگا۔

۵- بشرط موقع کتابیں کرر جاری کی جا سکیں گی مگر اس غرض کے لئے کتب خانہ میں کتاب کا لانا لازم ہے۔

۶- کتابیں گم یا خراب ہو جائیں تو مستعیر پر ذمہ داری عائد ہوگی۔

۷- کتابوں پر کسی قسم کا نشان سیاہی یا پنسل سے نہ لگایا جائے۔

۸- قلمی نسخے اور حوالے کی کتابیں جاری نہ کی جا سکیں گی۔